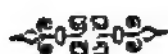
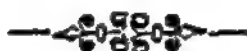
विषय सूची



'साहित्य-मण्डल माला' की इक्कीसवीं पुस्तक—

विश्व-विहार

[विश्व की विचित्रताओं का आश्चर्यजनक वर्णन]



सम्पादक

ठाकुर राजबहादुर सिंह



प्रकाशक

साहित्य-मण्डल,

दिल्ली

प्रकाशक—

ऋषभचरण जैन,

मालिक—साहित्य-मण्डल,

बाज़ार सीताराम, दिल्ली।

जुलाई, १९२३

पहली बार

मुद्रक—

रूप-वाणी प्रिंटिंग हाउस

चावड़ी बाज़ार, दिल्ली

[यह पुस्तक भारत की उन उदीयमान् आशाओं को समर्पित की जाती है, जिनके मस्तक पर भारत-माँ के उत्थान का उत्तर-दायित्व है।]

प्रकाशक के शब्द



यह युग विज्ञान का है। ससार के प्रत्येक राष्ट्र मे नित-नये आविष्कार हो रहे हैं। जो बातें कल हमें पता नहीं थी, वे हमें आज मालूम होगई हैं। जो रहस्य आज अन्धकार के पर्दे मे छिपे हुए हैं, उनकी खोज मे सैकड़ों मस्तिष्क लगे हुये हैं, और एक-न-एक दिन हम उन्हें जान लेने की पूरी आशा रखते हैं।

अखिल विश्व विचित्रताओं का भण्डार है। इसमें असख्य प्रकार के ऐसे भौगोलिक, खगौलिक, वानस्पतिक, शारीरिक और यान्त्रिक रहस्य अभी तक हमारी आँख से छिपे हुए हैं, जिन्हें जान लेने की की कल्पना-मात्र से रोमाच हो आता है। उदाहरणार्थ, ग्रह-नक्षत्रों के विषय में हम लोग अत्यन्त उत्सुक रहने पर भी इतना कम जानते हैं, कि तारों-भरी रात देखकर हम अपनी विवशता और क्षुद्रता पर मन-ही-मन अधीर हो उठते हैं। तारे क्या हैं ? कहाँ

हैं ? किन-किन पदार्थों के मिश्रण से इनकी व्युत्पत्ति हुई है ? उनमे प्राणी रहते हैं—या नहीं ? अगर रहते हैं, तो उनका रूप-रँग, चाल-ढाल और मानसिक विकास किस प्रकार का है ?—इन प्रश्नों का कोई निश्चित उत्तर हमारे पास नहीं है।

यह तो ऐसी बातें हैं, जिनके विषय में हम अधिक जानने मे असमर्थ हैं। परन्तु ज्ञान के अक्षय भण्डार का जो अति क्षुद्र अश आज इस जगत् के मेधावी विद्वान् पा-सके हैं, हम उससे भी अपरिचित ही हैं। जिन लोगों ने प्राणों की बाजी लगाकर, और सर्वस्व खोकर ज्ञान के चमकते हुए टुकड़ों का पता लगाया है, और जो आज अत्यन्त सस्ते दर में सर्व-साधारण के लिये सुलभ होगये हैं—उनका ज्ञान भी हमे न होना घोर दुर्भाग्य की बात है। जगत् के प्रत्येक सम्पन्न साहित्य में आज उन ज्ञातव्य विषयों-पर हजारों ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं, जिनका एक कण भी इस गुलाम देश की अभागी राष्ट्र-भाषा मे उप-लब्ध नहीं। अकेली जर्मन-भाषा मे केवल 'सूर्य' के सम्बन्ध में सत्तर हजार ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। हमने कलकत्ते की 'इम्पीरियल लाइब्रेरी' में केवल Tobacco और Anti-tobacco (तम्बाकू के पक्ष और विपक्ष में) विषय पर सैकड़ों किताबें देखी थीं। जब कभी योरोप और अमेरिका से पुस्तकों के नये सूचीपत्र हमारे पास आते हैं,

तो एक-ही विषय पर ग्रन्थों की सख्या देखकर हमारी हैरत का ठिकाना नहीं रहता। चींटी-जैसे अति क्षुद्र कीट के सम्बन्ध मे विदेशी भाषाओं मे आप चालीस-चालीस रुपये की एक-एक पुस्तक पा-सकेंगे। जर्मनी के एक प्रोफेसर साहब को बर्लिन के एक प्रकाशक ने केवल इसलिये भारतवर्ष भेजा था, कि वे भारत के एक प्राचीन और लोप-प्राय धर्म का अध्ययन करे, और उस पर जर्मन-भाषा में एक ग्रन्थ लिखे। इस यात्रा का समस्त व्यय और प्रोफेसर साहब का वेतन-भार प्रकाशक के जिम्मे था! और जब यह पुस्तक छपी, तो उसका दाम शायद एक-सौ आठ शिलिंग था! कुछ दिन पहले ही अफगानिस्तान में राज्य-क्रान्ति होने पर हमने इस छोटे से देश के सम्बन्ध में ऐसी-ऐसी पुस्तके देखी थी, जिनका दाम पच्चीस-पच्चीस और तीस-तीस रुपये था।

जिस समय हम देखते हैं, कि पैंतीस करोड़ भारत-वासियों की राष्ट्र-भाषा कहाने का गौरव रखनेवाली हिन्दी-भाषा में ससार के आधुनिक आविष्कारों की प्रगति पर एक भी अच्छा ग्रन्थ नहीं है, तो हमारा हृदय लज्जा और क्षोभ से भर उठता है। यों कहने और देखने को हिन्दी-भाषा मे आज नित्य अनेक पुस्तकें प्रकाशित होती हैं, किन्तु हमे अत्यन्त ग्लानि के साथ यह स्वीकार करना पडता है, कि इन पुस्तकों में से अधिकाश निरर्थक होती

हैं, और उनका उपयोग एक ओछे दर्जे के मनोरंजन के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता। बहुत-से हिन्दी-भाषा-भाषी प्रौढ़ पाठक भी, जो गम्भीर विषयों के अध्ययन की ओर विशेष रुचि रखते हैं, हमारे साहित्य मे अपने मतलब की चीजों का अभाव देखकर शान्त हो जाते हैं। हमारी भाषा का प्रचार रुकने का एक बहुत बडा कारण यह भी है।

इसमें सन्देह नहीं, कि हिन्दी के पाठकों की रुचि अभी तक इतनी परिमार्जित नहीं हुई है, कि वे हल्के साहित्य से ऊँचे धरातल की वस्तुओं मे भी पूरी दिलचस्पी ले सके। जो लोग ऐसे साहित्य का प्रकाशन करते हैं—निस्सन्देह जिनमे-से एक हम भी हैं—वे अपनी पुष्टि मे यही तर्क करते हैं, कि उन्हें पाठकों की रुचि के अनुसार ही पुस्तके निकालनी पडती हैं। किन्तु हमारा विश्वास है, कि किसी भी भाषा के पाठकों की रुचि बिगाडने या सुधारने का एक बड़ा उत्तरदायित्व प्रकाशकों पर भी है। किसी समय हिन्दी के पाठक 'क़िस्सा तोता-मैना' और 'साढे तीन यार' पढा करते थे। जब ऊँचे दर्जे के मौलिक और अनुवादित उपन्यास बाजार में आये, तो लोगों की रुचि बदल गई। इधर ऊँचे दर्जे की राजनैतिक और रचनात्मक पुस्तकों का प्रकाशन आरम्भ हुआ है,—यद्यपि इसकी प्रगति बहुत-ही क्षीण है—तो पाठकों की एक खासी सख्या इस प्रकार के

साहित्य को शौक़ीन बन गई है। इसीलिये हमारा विश्वास है, कि यदि और विषयों पर ऊँचे दर्जे की पुस्तकें प्रकाशित की जायँगी, तो जल्दी या देर में पाठक अवश्य उनकी तरफ़ आकर्षित होंगे।

प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन-द्वारा हम इसी प्रकार का एक नया साहस कर रहे हैं। इस पुस्तक का प्रणयन अँग्रेज़ी के अनेक तद्-विषयक ग्रन्थों के आधार पर किया गया है। विदेशी भाषा मे इस प्रकार की हज़ारों-लाखों पुस्तकें—अधिक-से-अधिक क़ीमती हैं। भारत की अन्य प्रान्तीय भाषाओं में भी इस प्रकार की अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। अकेली गुजराती-भाषा मे इस प्रकार की पुस्तकों की एक-एक प्रति का मूल्य सैकड़ों रुपये तक हो जायगा। बँगला मे तो इस से कई-गुनी सख्या में ऐसी पुस्तिकें मौजूद हैं। हिन्दी मे अब तक मुश्किल से दो-तीन छोटी-छोटी पुस्तकाये प्रकाशित हुई हैं, जिनका लक्ष्य भी अधिकाशत बालकों का मनोरञ्जन या ज्ञान-वर्द्धन ही है। ऐसी अवस्था मे हमारा यह साहस हिन्दी-साहित्य की जितनी क्षति-पूर्ति करेगा, यह आसानी से समझा जा सकता है। सम्पादन, सङ्कलन और चित्रों-इत्यादि की लागत का ख़याल रखकर हमने इस ग्रन्थ की एक-दम पाँच हजार प्रतियाँ छापी हैं। हम चाहते हैं कि पुस्तक को अधिक से-अधिक हाथों मे भेजना सम्भव

हो सके। इसलिये इस पुस्तक का दाम केवल तीन रुपया रक्खा गया है। एक-साथ पाँच हजार प्रतियाँ छपवाने पर ही हम इस दुर्लभ ग्रन्थ को इतने कम मूल्य मे पाठकों की भेट कर सकते थे। इसीलिये हमने यह साहसिकतापूर्ण कृत्य कर डाला है।

परन्तु हमारे इस साहस और परिश्रम की सफलता पाठकों के सहयोग पर निर्भर है। हिन्दी में किसी पुस्तक की एक-साथ पाँच हजार प्रतियाँ छपाकर बेचना साधारण बात नहीं है। यदि हमारे कृपालु ग्राहकों ने इस महत्त्वपूर्ण पुस्तक को अपनाकर हमारी उत्साह-वृद्धि की, तो हमें विश्वास है, हम मातृ-भाषा के चरणों में ऐसे-ऐसे सैकड़ों-हजारों ग्रन्थ भेट करेंगे।

विनीत,
ऋषभचरण जैन।

छोटे बच्चों को—

एक प्रतिभाशाली अँग्रेज कवि का कथन है—"बच्चा आदमी का बुजुर्ग है।" इसलिये यदि तुम्हारी अभिलाषा महापुरुष बनने की है, जिसमें देश के प्राचीन गौरव की रक्षा कर सको, और महत्वपूर्ण भविष्य की ओर साहस और विवेक से अग्रसर हो सको, तो अपनी बाल्यावस्था में ही वह सारे उत्तम गुण ग्रहण करने का सफल प्रयत्न करो, जिनके द्वारा अपनी मातृ-भूमि की यथा-समय सेवा करने के योग्य बन सको। एक बड़े भाई के नाते से, जिसकी उत्कण्ठा है, कि उसके छोटे भाइयों तथा बहिनों का लालन-पालन, शिक्षा-दीक्षा ठीक प्रकार से हो, मैं तुम्हें कल्पना, वीरता और ज्ञान के उस असाधारण क्षेत्र में ले चलना चाहता हूँ, कि जिसके महत्व को समझने-मात्र से ही तुम्हारे जीवन मे बहुत बड़ा परिवर्तन हो जायगा, तुम्हारे मन बहुत विकसित हो जायेंगे, तुम्हारे भाव बड़े उच्च हो जायेंगे, और तुम्हारे

अन्दर एक नई उमङ्ग, एक नये जीवन का प्रादुर्भाव हो जायगा।

ससार मे कौन ऐसा बालक अथवा बालिका है, जिसके हृदय में ससार की विचित्र बातों को, और प्रकृति के रहस्यों को जानने की इच्छा न होगी? पग-पग पर यह रहस्य आँखों के सामने आते हैं, और देखनेवाला आश्चर्य के समुद्र में पड जाता है। क्या तुम्हें उन प्रतिभाशाली, साहसी, कीर्तिमान् पुरुषों और स्त्रियों की जीवन-कथा जानने की अभिलाषा नहीं है, कि जिनकी स्मृति ससार के सम्मुख आज भी स्वर्णाक्षरों से लिखी हुई है, और जिन्होंने जीवन का ऊँचा-से-ऊँचा आदर्श ससार के सामने रख दिया है? क्या मनुष्य-जीवन के विकास और उन्नति का इतिहास, जिससे मालूम होता है, कि किस प्रकार वह अन्धकार के गढे से निकलकर आज सभ्यता के शिखर पर पहुँच गया है, तुम्हारे बालक-हृदय में आतुरता उत्पन्न नहीं करता? क्या तुम वर्तमान युग के आविष्कारों के रहस्य को नहीं समझना चाहते? क्या तुम्हें विद्वान् बनने की अभिलाषा नहीं है? —अपनी मित्र-मण्डली में सब से अधिक विज्ञ, बुद्धिमान् होने की कामना नही है, जिससे सब प्रश्नों का उत्तर देसको, और दूसरों को ज्ञान की बाते बतला सको?

यदि वह महान् भविष्य, जिसकी आशा हमारे सब ही बालक, जिनके हृदय में स्वदेश-प्रेम लहरें मार रहा है, कर रहे हैं,—यदि उस भविष्य को सच-मुच ही महान् और महत्वपूर्ण बनाना है, तो उस उत्थान का अंकुर हर घर में उत्पन्न कर देना चाहिये। "हम दूसरों को ज्ञान देकर अपने ज्ञान की वृद्धि करते हैं।"—इस कहावत में बहुत-कुछ सत्य है। फिर भी यह विदित है, कि प्रौढ मनुष्यों का ज्ञान भी बहुत-सी बातों में बहुत न्यून है, और सहस्रों ऐसी बातें हैं, जिनको वह अब भी सीख सकते हैं।

—पी० शेशाद्रि

(हेड ऑफ़ 'दि डिपार्टमेण्ट ऑफ़ इङ्गलिश स्टडीज़',
बनारस युनिवर्सिटी,
—प्रेसीडेण्ट—ऑल इण्डिया फ़ेडरेशन
ऑफ़ टीचर्स एसोसियेशन ।)



जङ्गली जानवर डरावने क्यों होते हैं?

'भय'-शब्द बड़ा भीषण है। लाखों वर्ष से इस शब्द का अर्थ समझकर हमारे संस्कार इस प्रकार के बन गये हैं, कि 'भय' का नाम सुनकर हमारे मन मे एक प्रकार का आतङ्क उत्पन्न होजाता है। ज़रा ध्यान से देखने पर हमें मालूम होता है, कि मनुष्य के प्राण आठों-पहर खतरे में पड़े रहते है। घर मे बैठे रहने पर, बाजार में चलते समय, नाव में सैर करते हुए—हम मृत्यु के अत्यन्त निकट रहते हैं। कौन जानता है, जिस कमरे मे हम बैठे हैं, इसी मिनट उसकी छत पर बिजली गिरने से हमारी मृत्यु नहीं होजायगी? बाज़ार में ताँगा, बग्घी, ट्राम और बिजली के तारों में हमारी मृत्यु का सन्देश छिपा रह सकता है। नदी की सैर करते समय अकस्मात् नाव उलटकर हमारे रङ्ग में भङ्ग डाल सकती है। इस सङ्कट या भय का सामना करने के लिये मनुष्य अपनी प्रकृति-दत्त प्रतिभा का उपयोग करता है। वास्तव में मनुष्य के अधिकाश कार्य भय

से मोरचा लेने के लिये ही होते हैं। यह सत्य केवल व्यक्तिगत जीवन में-ही स्वयसिद्ध नहीं, बल्कि बड़े-बड़े राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों का रहस्य भी इसी में छिपा हुआ है। प्रत्येक देश में पुलिस के हजारों सिपाही और पहरेदार, दुर्जनों के भय से सर्व-साधारण की रक्षा करते हैं, दूसरे देश की शक्तियों से डरकर ही प्रत्येक देश अपने यहाँ असख्य सेना, तोप-बन्दूके और हवाई जहाज रखता है।

जो बात मनुष्य के लिये लागू है, वही पशुओं के लिये भी है। जिस प्रकार हमें अपने धन, मान, सम्पत्ति, प्राण और अपने देश की रक्षा की चिन्ता रहती है, उसी प्रकार पशु भी अपनी प्राण-रक्षा के लिये प्रस्तुत रहते हैं। हम अपने दैनिक जीवन मे देखते हैं, कि जो सिपाही या पहरेदार अधिक मुद्दत तक अपनी नौकरी में रहता है, उसकी सूरत कुछ भयानक और बेढङ्गी होजाती है। पठान-लोग एशिया-महादेश के सब से खूँख्वार और लड़ाकू निवासी हैं। यही कारण है, कि उनकी सूरत ऐसी विकृत होगई है कि एकाएक उन्हे देखकर हम भय से सहम उठते हैं। पठान-लोग सदियों से रक्त-पात करते-करते इतने बेडौल होगये हैं कि मन में कोमल भावनाओं का उदय होने पर भी उनकी मास-पेशियों में तदनुकूल अन्तर नही आता। पठान-लोग हिन्दुस्थान की रेल-गाड़ियों के तीसरे दर्जे मे

जब सफ़र करते हैं, तो उनकी भीषण आवाज़ से भयभीत होकर ही बहुत-से कमज़ोर हिन्दुस्तानी उनके पास फटकने का साहस नहीं करते। शायद पठानों में यह भयङ्करता उस समय से चली आरही है, जब प्राचीन आर्यों ने उत्तरी ध्रुव से चलकर भारतवर्ष पर अधिकार जमाया था, और उसके बाद भी पहले आर्यों और बाद में सिकन्दर-इत्यादि यशाभिलाषी नरेशों के हमले उन पर होते रहे। इन्हीं लोगों से लडते-भिडते और खीमते रहने के कारण शायद क्रूरता पठानों के स्वभाव और शरीर का अनिवार्य अङ्ग बन गई हैं।

वास्तव में जङ्गली जानवर भी किसी डर से ही गुर्राते या काटते हैं। प्रकृति ने उन्हें मनुष्य की-सी बुद्धि नहीं दी, जिससे वे अपनी रक्षा के लिये यन्त्रों का आविष्कार कर सकते,—अतएव वे थोडा-सा ख़तरा पडने पर ही अपने दाँतों और पञ्जों का उपयोग करके अपनी रक्षा करते हैं। जब कोई शेर या चीता किसी आदमी को मिलता है, तो वह अपनी नाक सिकोड़कर दाँत निकालता है, और फिर गुर्राकर उसके ऊपर टूट पडता है। इसका कारण यह नहीं है कि वह केवल मनुष्य की जान लेने के लिये ही ऐसा करता है, बल्कि इसकी वजह यह है कि वह आदमी से डरता है, और उसे इसलिये मार डालना चाहता है कि वह उसे चोट न पहुँचा सके।

से मोरचा लेने के लिये ही होते हैं। यह सत्य केवल व्यक्तिगत जीवन में-ही स्वयंसिद्ध नहीं, बल्कि बडे-बडे राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों का रहस्य भी इसी में छिपा हुआ है। प्रत्येक देश में पुलिस के हजारों सिपाही और पहरेदार, दुर्जनों के भय से सर्व-साधारण की रक्षा करते हैं, दूसरे देश की शक्तियों से डरकर ही प्रत्येक देश अपने यहाँ असख्य सेना, तोप-बन्दूके और हवाई जहाज रखता है।

जो बात मनुष्य के लिये लागू है, वही पशुओं के लिये भी है। जिस प्रकार हमे अपने धन, मान, सम्पत्ति, प्राण और अपने देश की रक्षा की चिन्ता रहती है, उसी प्रकार पशु भी अपनी प्राण-रक्षा के लिये प्रस्तुत रहते हैं। हम अपने दैनिक जीवन में देखते हैं, कि जो सिपाही या पहरेदार अधिक मुद्दत तक अपनी नौकरी में रहता है, उसकी सूरत कुछ भयानक और वेढङ्गी होजाती है। पठान-लोग एशिया-महादेश के सब से खूँख्वार और लडाकू निवासी हैं। यही कारण है, कि उनकी सूरत ऐसी विकृत होगई है कि एकाएक उन्हें देखकर हम भय से सहम उठते हैं। पठान-लोग सदियों से रक्त-पात करते-करते इतने बेडौल होगये हैं कि मन में कोमल भावनाओं का उदय होने पर भी उनकी मास-पेशियों में तदनुकूल अन्तर नहीं आता। पठान-लोग हिन्दुस्थान की रेल-गाडियों के तीसरे दर्जे में

जब सफ़र करते हैं, तो उनकी भीषण आवाज़ से भयभ
होकर ही बहुत-से कमजोर हिन्दुस्तानी उनके पास फटक
का साहस नहीं करते। शायद पठानों में यह भयङ्कर
उस समय से चली आरही है, जब प्राचीन आर्यों ने उत्त
ध्रुव से चलकर भारतवर्ष पर अधिकार जमाया था, अ
उसके बाद भी पहले आर्यों और बाद में सिकन्दर-इत्य
यशाभिलाषी नरेशों के हमले उन पर होते रहे। इ
लोगों से लड़ते-भिड़ते और खीमते रहने के कारण शा
क्रूरता पठानों के स्वभाव और शरीर का अनिवार्य अ
बन गई हैं।

वास्तव में जङ्गली जानवर भी किसी डर से ही गु
या काटते हैं। प्रकृति ने उन्हें मनुष्य की-सी बुद्धि नहीं
जिससे वे अपनी रक्षा के लिये यन्त्रों का आविष्कार
सकते,—अतएव वे थोड़ा-सा खतरा पड़ने पर ही अ
दाँतों और पञ्जों का उपयोग करके अपनी
करते हैं। जब कोई शेर या चीता किसी आदमी
मिलता है, तो वह अपनी नाक सिकोड़कर दाँत निका
है, और फिर गुर्राकर उसके ऊपर टूट पड़ता है। इ
कारण यह नहीं है कि वह केवल मनुष्य की जान लेने
लिये ही ऐसा करता है, बल्कि इसकी वजह यह है
वह आदमी से डरता है और उसे ...

इस डर या भय से हम संसार मे बडे-बडे खतरनाक काम होते हैं। यूरोप के गत महायुद्ध में तोप चलानेवालों को यह सिखाया जाता था कि वे अपनी शक्ल भयानक बनाकर डरावनी आवाज लगायें, जिससे दुश्मन उनसे डर जाँय। इनाम के लिये लडनेवाले सिपाही बहुधा अपने विरोधी शत्रु को घबराहट में डालने के लिये यही उपाय काम में लाते हैं। यह बडे अचरज की बात है कि आदमी और जानवर व्यवहार और क्रिया में मिलते-जुलते हैं। फर्क यही है कि अधिकाश मनुष्यों को शिक्षा और धर्म ने यह सिखा दिया है, कि वे डर को जीत लें, और नीचे दर्जे के बर्ताव से बचें।

जङ्गली जानवरों के भयानक होने का दूसरा कारण यह है, कि उन्हें सदा खाने की चिन्ता लगी रहती है। जब वे पाल लिये जाते हैं, या उन्हे चिडियाघर में बन्द दिया जाता है, तो वे पहले की अपेक्षा अधिक सीधे हो जाते हैं। इसका कारण कुछ अशों में यह भी है कि उनके खाने की फ़िक्र दूर कर दी जाती है। उन्हें निर्दिष्ट समय पर बराबर खाना दिया जाता है, इसलिये इस चिन्ता से उन्हें छुट्टी मिल जाती है।

लेकिन जङ्गल में खाने-पीने के लिये बडा बखेड़ा करना पड़ता है, और जानवर न-सिर्फ इसलिये डरावनी सूरत बना लेते हैं, कि वे अपने शिकार को पकड़ लें, बल्कि

इसलिये भी, कि शिकार को पकड़ लेने के बाद दूसरे जानवर उन्हे उनसे छीन न लें।

सीधे और पालतू जानवर भी खतरे की सम्भावना होने पर ऐसा काम कर बैठते हैं, जो उनके लिये अस्वाभाविक कहा जा सकता है। खरगोश, गिनी सुअर* और सफेद चूहे जब कभी डरते हैं, तो प्राय अपने बच्चों को खा जाते हैं।

एक पुराने लेखक ने उस समय का जिक्र किया है, जब भेडिया, और मेमना साथ रहते थे, तेंदुआ बकरी के बच्चे के साथ बैठता था, बछड़ा तथा शेर का बच्चा साथ पलते थे, और एक छोटा बच्चा उनकी देख-रेख करता था। अगर वह समय फिर आजाय, तो—जैसाकि भविष्य-वक्ताओं ने कहा है, निश्चय ही ससार का वातावरण अत्यन्त शान्तिमय होजायगा, क्योंकि तब न-केवल मनुष्यों का ही भय दूर हो जायगा, बल्कि जानवर भी निडर हो जायँगे, और सब के लिये खाने-पीने का ढेर लग जायगा। असल में केवल पेट की चिन्ता के डर से ही साधारणत कोई जाति, राष्ट्र या जङ्गली जानवर एक-दूसरे की सरहद में जाकर हमला करते हैं।

---

* मे ज़िल देश का सुअर, जो सफ़ेद रग और छोटे क़द का होता है।

पहलवान पक्षी

— ❀ —

शुतरमुर्ग और उसकी अनोखी भूख।

शुतरमुर्ग ससार का एक विचित्र पक्षी है। भिन्न देशों में इसके विषय मे भिन्न प्रकार की किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। फारसी की प्रसिद्ध पुस्तक 'अलिफ़लैला' (सहस्र-रजनी-चरित्र) में इस पक्षी का उल्लेख बडे रहस्यमय ढङ्ग से किया गया है। सिन्दबाद जहाजी के क़िस्से मे शुतरमुर्ग का वर्णन् बडा-ही रोमाञ्चकारी और मनोरञ्जक है। चिडियाघरों के अतिरिक्त भारतवर्ष में इस पक्षी का अस्तित्व नहीं पाया जाता, इसलिये हमारे पाठकों के लिये इसका परिचय अत्यन्त उपयोगी और आश्चर्यजनक सिद्ध होगा।

शुतरमुर्ग ससार मे सब से बड़ा पक्षी है। यह अद्भुत जन्तु है। पूरे क़द का नर शुतरमुर्ग आठ फ़ीट ऊँचा और ७५ से १०० सेर तक भारी होता है, यह इतने ज़ोर से लात मारता है, कि उसकी चोट से आदमी मर जा-सकता है।

शुतरमुर्ग हमेशा से आदमी के लिये एक बड़े काम का पक्षी साबित हुआ है। दक्षिणी अफ्रीका मे, जहाँ यह बहुतायत से पाया जाता है, इसके बडे-बडे अण्डे, जो वज़न



पहलवान पक्षी

मे डेढ-दो सेर तक भारी होते हैं, यहाँ के आदमियों के लिये मजेदार और पुष्टिकारक भोजन का काम देते है। इसके शानदार पङ्ख और पूँछ के बाल न-सिर्फ सजावट के काम में आते हैं, बल्कि अफ्रीका के मूल-निवासी इन्हें अपने कपडे-लत्तों मे भी लगाते हैं। सभ्य देशों मे भी समय-समय पर शुतरमुर्ग के पर क़ीमती कपडों मे इस्तेमाल किया जाते हैं। कभी-कभी इन परों की क़ीमत यहाँ तक चढ जाती है, कि एक पर का दाम तीस से पैंतालीस रुपये तक हो जाता है, और समूचे पक्षी के दाम तीन हजार रुपये तक लग सकते हैं।

इसकी कई जातियाँ हैं। एक प्रकार का शुतरमुर्ग उत्तरी अफ्रीका, सीरिया और मैसोपोटामिया—आदि देशों में पाया जाता है, और दूसरी तरह का सुमालीलैण्ड मे, लेकिन सब से अच्छी जाति का शुतरमुर्ग दक्षिणी अफ्रीका—खासकर कालाहारी के रेगिस्तान, और माटानेल तथा मशोना लोगों के देशों मे, मिलता है।

रेगिस्तानों मे, जहाँ कहीं एकाध टुकडे झाडियों के होते हैं, उनमें बैठकर शुतरमुर्ग अपने दुश्मनों को होशियारी के साथ देख सकता है, और उसे कोई नहीं देख सकता, क्योंकि उसकी लम्बी और सफाचट गर्दन और छोटा तथा चौड़ा सिर झाड़ी के ऊपर निकले रहने पर भी दूर से मुश्किल-से पहचाना जा सकता है।

दौड़ने में निराला।

शुतरमुर्ग पक्षी होने पर भी उड़ नहीं सकता, पर दौड़ने में कोई इसकी बराबरी नहीं कर सकता, और इसके फैले हुए पख इसकी चाल में बहुत मदद देते हैं। दौड़ने में यह तेज़-से-तेज घोड़े और हिरन से आगे निकल जाता है, और अक्सर घण्टे में २६ मील की रफ़ार से दौड़ सकता है। लेकिन इसमे सीधे न दौड़कर गोलाकार दौड़ने की बुरी आदत होती है, इसलिये वह शिकारी से नही बच पाता। यह बहुत समय तक बिना पानी के रह सकना है, पर गर्मी के मौसम में, जब यह झील या समुद्र के पास होता है, तो प्राय. नहाया करता है।

शुतरमुर्ग मे सब से असाधारण बात शायद उसकी भूख है। वास्तव में यह सर्व-भक्षी होता है। दूध पिलाने-वाले छोटे जानवर, चिड़ियाँ, साँप, छिपकली, कीड़े-मकोड़े, घास, पत्तियाँ, फल और बीज-आदि सभी चीजे यह खा जाता है। पर वह सिर्फ इन्हीं चीजों को खाकर सन्तोष नहीं करना। वह चाबियाँ, लोहे की कीलें, सिक्के, बटन, धातु की और चीजे, शीशा-पत्थर और अपनी चोंच में आनेवाली अन्य सभी चीज़ों को निगल जाता है। लेकिन वह ऐसे अनोखे भोजन को हमेशा पचा नहीं सकता, और कई बार यह बात देखने में आयी है, कि शीशे के टकड़े खा जाने के बाद शुतरमुर्ग मर गये हैं।

सुँघनी की डिबिया।

एक बार जब एक शुतरमुर्ग का पेट फाड़ा गया, तो उसमें से बहुत-से पत्थर के टुकड़े निकले। इन पत्थरों में ज्यादातर घिसकर ऐसे हो गये थे, जैसे उन पर बड़ी सफ़ाई से पालिश करदी गयी हो। त्रिपोली के एक राजदूत की एक चाँदी की बड़ी और कीमती सुँघनी की डिबिया खो गयी थी। बहुत-से लोगों पर उसके चुराने का सन्देह हुआ। एक शुतरमुर्ग, जो पहले वहाँ मैदान में रक्खा गया था, कुछ समय बाद जहाज पर यूरोप के लिये रवाना कर दिया गया। किन्तु रास्ते में ही वह मर गया। उसके मरने का कारण जानने के लिये उसका पेट फाड़ा गया, तो उसमें से लोहे की कीले, चाबियाँ, लोहे और ताँबे के टुकड़े, एक लालटेन का कुछ हिस्सा और वह खोई हुई सुँघनी की डिबिया मिली, जिसके तेज़ कोने और नक्काशी घिसकर साफ़ होगये थे।

नर शुतरमुर्ग प्राय शेर के दहाड़ने की-सी आवाज़ करता है, किन्तु और समयों पर, ख़ासकर सुबह के वक्त उसकी आवाज़ बैल की-सी हल्की रम्भाहट मालूम होती है। खाते समय उसके मुँह से सिसकारी की आवाज़ निकलती है, लेकिन शुतरमुर्ग के छोटे बच्चे नहीं बोलते।

कई मादा शुतरमुर्गों के साथ सिर्फ एक नर शुतरमुर्ग रहता है। जब अण्डे देने का समय आता है, तो सब मादा

दौड़ने में निराला।

शुतरमुर्ग पक्षी होने पर भी उड नहीं सकता, पर दौडने में कोई इसकी बराबरी नहीं कर सकता, और इसके फैले हुए पर इसकी चाल में बहुत मदद देते हैं। दौडने में यह तेज-से-तेज घोडे और हिरन से आगे निकल जाता है, और अक्सर घण्टे में २६ मील की रफ़ार से दौड सकता है। लेकिन इसमे सीधे न दौड़कर गोलाकार दौडने की बुरी आदत होती है, इसलिये यह शिकारी से नही बच पाता। यह बहुत समय तक बिना पानी के रह सकता है, पर गर्मी के मौसम मे, जब यह झील या समुद्र के पास होता है, तो प्राय नहाया करता है।

शुतरमुर्ग मे सब से असाधारण बात शायद उसकी भूख है। वास्तव मे यह सर्व-भक्षी होता है। दूध पिलाने-वाले छोटे जानवर, चिडियाँ, साँप, चिपकली, कीडे-मकौडे, घास, पत्तियाँ, फल और बीज-आदि सभी चीजे यह खा जाता है। पर वह सिर्फ इन्हीं चीजों को खाकर सन्तोष नहीं करता। वह चाबियां, लोहे की कीलें, सिक्के, बटन, धातु की और चीजे, शीशा-पत्थर और अपनी चोंच में आनेवाली अन्य सभी चीजों को निगल जाता है। लेकिन वह ऐसे अनोखे भोजन को हमेशा पचा नहीं सकता, और कई बार यह बात देखने में आयी है, कि शीशे के टुकडे खा जाने के बाद शुतरमुर्ग मर गये हैं।

सुँघनी की डिबिया।

एक बार जब एक शुतरमुर्ग का पेट फाड़ा गया, तो उसमें से बहुत-से पत्थर के टुकड़े निकले। इन पत्थरों में ज्यादातर घिसकर ऐसे हो गये थे, जैसे उन पर बड़ी सफ़ाई से पालिश करदी गयी हो। त्रिपोली के एक राजदूत की एक चाँदी की बड़ी और क़ीमती सुँघनी की डिबिया खो गयी थी। बहुत-से लोगों पर उसके चुराने का सन्देह हुआ। एक शुतरमुर्ग, जो पहले वहाँ मैदान में रक्खा गया था, कुछ समय बाद जहाज़ पर यूरोप के लिये रवाना कर दिया गया। किन्तु रास्ते में ही वह मर गया। उसके मरने का कारण जानने के लिये उसका पेट फाड़ा गया, तो उसमें से लोहे की कीलें, चाबियाँ, लोहे और ताँबे के टुकड़े, एक लालटेन का कुछ हिस्सा और वह खोई हुई सुँघनी की डिबिया मिली, जिसके तेज़ कोने और नक्काशी घिसकर साफ़ होगये थे।

नर शुतरमुर्ग प्रायः शेर के दहाड़ने की-सी आवाज़ करता है, किन्तु और समयों पर, ख़ासकर सुबह के वक्त उसकी आवाज़ बैल की-सी हल्की रम्भाहट मालूम होती है। खाते समय उसके मुँह से सिसकारी की आवाज़ निकलती है, लेकिन शुतरमुर्गों के छोटे बच्चे नहीं बोलते।

कई मादा शुतरमुर्गों के साथ सिर्फ़ एक नर शुतरमुर्ग रहता है। जब अण्डे देने का समय आता है, तो सब मा-

एक ही घोंसले में अण्डे देती हैं, और फिर अण्डे सेने का अधिकतर काम नर-ही करता है। सारी रात वह घोंसले पर बैठा रहता है, जिससे वह अण्डे चुरा ले जानेवाले गीदडों से उनकी रक्षा कर सके, और दिन मे भी वह घण्टों अण्डों को ढके रखता है। तब मादा के सेने की बारी आजाती है। दिन मे बहुत देर तक अण्डे रेत से ढक-कर चिड़ियाँ घोंसले से बाहर इसलिये रहती हैं, कि सूर्य की गर्मी से अण्डे मैले न हो जॉय।

सुमालीलैण्ड के निवासी शुतरमुर्ग का शिकार ऊँटों पर चढ़कर करते हैं, और कभी-कभी गहरी खाई खोदकर उन्हे पकडते हैं। दक्षिण-अफ्रीका की झाडियों मे रहनेवाले शुतरमुर्ग की खाल ओढकर उनके पास पहुँच जाते हैं, और जहरीले तीरों से उनका शिकार करते हैं।

पङ्ख नोचने का काम।

जिस समय यूरोप और अमेरिका मे शुतरमुर्ग के पङ्ख बहुत पसन्द किये जाने लगे, तो दक्षिण-अफ्रीका में बहुत-से शुतरमुर्ग पालने के बाडे बन गये थे, और सन् १८८२ ई० में कुछ शुतरमुर्ग सयुक्त-देश अमेरिका को भी ले जाये गये थे, और वहाँ कैलीफोर्नियाँ में उन्हें पाला गया था।

सिर्फ नर शुतरमुर्ग के ही पर इतने खूबसूरत होते हैं, जिनकी सब जगह प्रशसा होती है। जब उसके शरीर पर खूब पर उग आते हैं, तो उसे एक लकड़ी के सन्दूक़ में

इस तरह बन्द कर देते हैं, कि उसकी गर्दन छेद से बाहर निकलती रहे। उसके सिर पर मोजे की शक्ल की एक टोपी भी पहना देते हैं। इसके बाद परा तरकीब से कतर लिये जाते हैं। उसे इससे कोई तकलीफ नहीं होती, क्योंकि उसकी नसों-आदि में चोट नहीं पहुँचने पाती, न इससे खून ही गिरता है।

शुतरमुर्ग के पास अपनी रक्षा का सब से बड़ा साधन उसके ताकतवर पैर होते हैं, जिनसे वह इतने ज़ोर से लात मारता है, कि उससे बड़े-बड़े भयानक चौपाये तक बेबस होते हैं, पर जब शुतरमुर्ग दूसरे शुतरमुर्ग से लड़ता है, तो वह प्राय चोंच और पैर दोनों से ही काम लेता है।

रोमन लोग शुतरमुर्ग का मांस बहुत पसन्द करते थे, और सम्राट् होलियोगैबलस ने एक दावत में एक बार ६०० शुतरमुर्गों का गोश्त पकवाया था। फर्मियस-नामक एक प्रसिद्ध पेटू के सम्बन्ध में यह कहावत प्रसिद्ध है, कि उसने एक ही बार में एक समूचे शुतरमुर्ग का मांस खा लिया था।

गुलाब का फूल सूंघने पर क्या होता है ?

हम लोग गुलाब और दूसरे ख़ुशबूदार फूलों को बहुत पसन्द करते हैं, पर बहुत-थोड़े लोग यह जानते हैं, कि हम उनकी ख़ुशबू कैसे लेते हैं। जिस चीज को हम सूँघते हैं, उसमें से बहुत छोटे-छोटे अणु, जो साधारणत ठोस होते हैं, निकलते हैं। पर यह इतने छोटे होते हैं, कि हम इन्हें देख या छूकर अनुभव नहीं कर सकते। यह चीज हमारी नाक में घुसकर नाक के ऊपरी हिस्से में जाती है, जहाँ इसकी ख़ुशबू दिमाग को मिलती है। सुगन्ध या खुशबू लेनेवाली स्नायुओं के स्फुरित होने के पहले यह चीज तरल के रूप मे हो जाती है, और इसके बाद वह स्नायु दिमाग के पास उसका सन्देश भेजती हैं। इसीलिये जब हमारी नाक का ऊपरी हिस्सा सूख जाता है, तो हमे खुशबू नहीं मिलती। सर्दी या जुकाम होने पर हमारी नाक बन्द हो जाती है, और हमें खुशबू नहीं मिलती, क्योंकि वे खुशबू के अणु नाक के ऊपरी हिस्से तक नहीं पहुँच पाते। नाक के निचले भाग के स्नायु जब मिर्च-आदि से उत्तेजित होते हैं, तो उस चीज को बाहर निकालने के लिये छींक आती है।

कीड़े खानेवाले पौदे।

अँग्रेजों के देश—ब्रिटेन में 'मनड्यू'-नामक एक पौदा होता है, जो यहाँ बडे रूप मे दिखाया गया है। यह पौदा कीडे-मकौडे खाया करता है। इसकी पत्तियाँ चौड़ी और गोल होती हैं। इनके किनारों पर सुईनुमा छोटे-छोटे रोयें होते हैं, जिनका सिरा गोल होता है, और जिनमे से एक तरह का चिपचिपा रस बहता है। जब कोई मकौडा इस गोल सिरे को छूता है, तो वह जकड उठता है, और वे रोयें तुरन्त उसे चारों ओर से ढक लेते हैं। फिर बहुत-सी गाँठों से पौदा रस बहाता है, जिससे मकौडे का शरीर हज़्म होता है। जब रस मे मकौडे का पचा हुआ अश मिल जाता है, तो वह तरल रस फिर पौदे में सूख जाता है, और उससे पोदा बढता और मजबूत होता है। बाद मे पत्ती खुल जाती है, और मकौडे का सूखा शरीर गिर पडता है।

एक दूसरा पौदा, जो मकौडों को पकडकर निगलता है, 'वीनस फ्लाई ट्रैप' कहलाता है, जो उत्तरी अमेरिका में पाया जाता है। पत्ती का सिरा रोयेंदार जाल-सा होता है। इस जाल के दोनों हिस्सों में तीन-तीन छोटे रोयें होते हैं। मकौडे से छू जाने पर जाल के दोनों हिस्से चूहेदानी की तरह तुरन्त बन्द होजाते हैं, और फिर पकड़ा हुआ मकौडा रस-द्वारा हज़्म होता है।

बेतार के तार का अपूर्व चमत्कार

—— ◦◦◦ ——

बेतार के तार से जो आवाज एक जगह से दूसरी जगह भेजी जाती है, उसकी तरंगों की चाल एक सेकण्ड में १,८६,००० मील होती है। इसका फल अद्भुत होता है। उदाहरण के लिये दिल्ली की क़ुतुब-मीनार पर जब कोई घटा बारह बजावे, और उसकी आवाज बेतार के तार से भेजी जाय; तो आगरा, बम्बई, अहमदाबाद, लाहौर, पेशावर, लखनऊ और इलाहाबाद के बेतार के तारवाले यन्त्र में सुननेवालों को यह आवाज उसी क्षण सुनाई देगी,—पर ठीक क़ुतुब-मीनार के नीचे खड़े हुए आदमी को वह आवाज लगभग चौथाई सेकण्ड बाद सुनाई देगी, क्योंकि हवा मे आवाज की चाल सिर्फ ३६४ गज फी-सेकण्ड है। बेतार के तार की इस तीव्रतम गति के कारण बम्बई में बैठा हुआ आदमी इस यन्त्र-द्वारा दिल्ली के क़ुतुब-मीनार पर बजनेवाले घण्टे की आवाज ठीक उसके नीचे खड़े हुए आदमी की अपेक्षा जल्दी सुन लेता है।

———

खगोल-विद्या का महत्व ।

—०:०—

बहुत-से लोग मन-ही-मन सोचते होंगे, कि खगोल-विद्या की जरूरत क्या है ? उदाहरण के लिये 'वृहस्पति' तारे का वजन जान लेने से मनुष्य को क्या लाभ होगा ? लेकिन जो खगोल-वेत्ता धीरज और लगन के साथ अपने काम में लगा है, उसके लिये उसकी उपयोगिता अत्यन्त महत्व-पूर्ण है, आवश्यकता केवल उसके जान लेने की है । इस अध्याय में बतलाया गया है, कि खगोल-विद्या जाननेवाले संसार की उन बड़ी-बड़ी नक्षत्र-शालाओं में क्या काम करते हैं, जो विभिन्न देशों की ऊँची और एकान्त पहाड़ियों पर बनी हुई हैं ।

लोग प्राय ऐसा समझते हैं, कि खगोल या आकाश के नक्षत्रों की जानकारी प्राप्त करने की विद्या मामूली आदमियों के लिये विशेष काम की चीज नहीं है । किन्तु वास्तव में, यह न केवल थोड़े-से विज्ञान जाननेवालों के लिए ही लाभदायक है, बल्कि हम सब के प्रति दिन के जीवन के लिये जरूरी है । उदाहरण के लिये, अगर खगोल-विद्या का ज्ञान संसार मे न रहे, तो हमारे लिये घड़ियों का समय ठीक रखना असम्भव हो जायगा, न ...

बन्दरगाह से दूसरे बन्दरगाह को जानेवाले जहाज के लिये ही ठीक और सीधा रास्ता मिल सकेगा। अगर खगोल-विद्या का जानकार सूर्य, तारों और ग्रहों का ठीक हिसाब न बताये, तो जहाज समुद्र में भटकता फिरे, और बहुत-सा समय और रुपया व्यर्थ खर्च होजाय।

खगोल-विद्या से हम भूत-काल की ऐतिहासिक तिथियों का पता ग्रहणों से मिलाकर लगा सकते हैं, और वर्तमान काल मे तो इससे लाभ हैं ही। इस विद्या की परिगणना के अनुसार हम यह भी जान सकते हैं, कि भविष्य में कब सूर्य या चन्द्र-ग्रहण लगेगा।

खगोल-विद्या के जानकारों ने पचीस वर्ष पहले सूर्य मे 'हेलियम'-नामक एक गैस का पता लगाया था, जो अब हवाई जहाजों को जलने से बचाने के काम में लाई जाती है।

मनुष्य-जाति की सेवा

ऐसा उपयोगी काम करने क कारण हम खगोल-विद्या-विशारदों को मनुष्य-जाति की भलाई करनेवाले कह सकते हैं। ससार में दो सब से बड़ी नक्षत्र-शालाएँ हैं—एक ग्रीनविच में, और दूसरी 'लिक'-नक्षत्रशाला है, जो अमेरिका के कैलिफोर्निया-नामक प्रदेश में है। यहाँ बड़े-बड़े धुरन्धर खगोल-वेत्ता काम करते हैं। सब आदमियों को अलग-अलग काम बाँट दिये जाते हैं।

ये लोग 'बारी-बारी' से दिन-रात नक्षत्रों के अध्ययन का कार्य करते हैं।

खगोल-विद् बहुत बड़ी दूरबीन के नीचे बिछौने पर लेट जाता है। दूरबीन मोटर-द्वारा किसी खास नक्षत्र की दिशा में उसका निरीक्षण करने के लिये लगाया जाता है। यदि मोटर न लगायी जाय, तो जमीन के अपनी धुरी पर घूमती रहने के कारण (जिसके साथ नक्षत्रशाला भी घूमती है) दूरबीन की दिशा में अन्तर पड़ जाय, और अभीष्ट नक्षत्र न दिखायी दे।

कार्य की कठिनता

खगोल-विद्या-विशारदों को बड़ी-बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। उन्हें जाड़ों में ठिठुरता रहकर अपना काम करना पड़ता है, क्योंकि जिन ठण्डे देशों और पहाड़ियों पर यह काम होता है, वहाँ बिना मकान के अन्दर आग या बिजली-द्वारा गर्मी पहुँचाये रहना कठिन हो जाता है, लेकिन नक्षत्र-शालाओं में गर्मी नहीं पहुँचाई जा सकती। इसका कारण यह है कि गर्मी पहुँचाने से वहाँ का वातावरण गर्म हो उठता है, और दूरबीन का शीशा उससे काँप उठता है, जिससे नक्षत्र ठीक-ठीक नहीं देखे जा सकते।

खगोल-विद्या को न-केवल तारों के देखने का ही काम करना पड़ता है, बल्कि बहुत-से औजारों से भी काम लेना

पड़ता है, जिसके द्वारा वह अपनी देखी हुई बातों का हिसाब रखता है। उसे अङ्क-गणित के बहुत-से हिसाब भी लगाने पड़ते हैं, और हमेशा इस बात का डर लगा रहता है, कि कहीं आसमान में बादल न छा जायँ, जिससे उसका रात-भर का परिश्रम व्यर्थ जाने की सम्भावना रहती है।

पहाड़ पर क्यों ?

बिल्कुल साफ़ वातावरण में काम कर सकने के लिये बहुत-सी नक्षत्र-शालाएँ ऊँची पहाड़ियों पर बनती हैं। इन्हीं एकान्त पहाड़ियों पर संसार से अलग होकर जाड़े का कष्ट उठाते हुए खगोल-विद् सृष्टि की महान् समस्याओं पर विचार करने में इसलिये लगा रहता है, जिससे मनुष्य का ज्ञान और शक्ति बढ़े।

इस प्रकार हम देखते हैं कि खगोल-वेत्ता कोई ऐसा आदमी नहीं है, जो व्यर्थ ही इतना समय और धन खर्च कर रहा है। उस कार्य से वह संसार से कितने ही अन्ध-विश्वासों की जड़ काट रहा है। पहले जब ग्रहण लगता था, तो लोग बहुत शङ्कित और चिन्तित होते थे—ग्रहण को लोग संसार को नष्ट होने का चिह्न, और पुच्छल तारों को प्लेग (महामारी) फैलने का पूर्व-रूप मानते थे। अब खगोल-विद्या के जानकारों ने यह भ्रम दूर कर दिया है, और हम इन बातों का रहस्य समझने लगे हैं।

घड़ी ठीक समय कैसे बताती है ?

यहाँ हम यह बताना चाहते हैं कि घड़ी कैसे काम करती है। जब हम सिरे पर चाबी देते हैं, तो खास कमानी कसी जाती है। यह फौरन् खुलने की कोशिश करती है, और ऐसा करते हुए घूमकर गियर-पहियों को हरकत देती है, जिसके एक सिरे से यह बँधी होती है, और इस्केपमेण्ट कमानी को नीचे दौड़ने से रोकती है, जो पहियों को बहुत शीघ्रतापूर्वक घुमाता है। इस्केप-मेण्ट में एक टेढ़ा क्रॉस-बार होता है, जिसमे दो नोक होती हैं, जो पैलट कहलाती हैं। वह आगे और पीछे भूलता है, और एक समय मे एक ही पैलेट इस्केपमेण्ट के पहिये पर ठहर सकता है। चूँकि पहिया धीरे-धीरे घूमता है, इसलिये पैलेट दोनों मे से एक को पकड़कर कुछ देर रोक रखता है, पर चूँकि इस्केपमेण्ड आगे-आगे भूल जाता है, अत वह एक छोटे पहिए को, जो कम्पेसेटेड बैलेंस कहलाता है, घुमाता है, जो कुछ अंशों में एक छोटी बाल-कमानी को चाबी देती रहती है। इस्केपमेण्ट के भूलते ही बाल-कमानी खुलने लगती है, और पहिया घूम जाता है, तथा इस्केपमेण्ट दूसरी दिशा को चला जाता है। इससे इस्केपमेण्ट के पहिये का एक दाँत छूट जाता है, और इसके बाद इस्केपमेण्ट पीछे हट जाता है। ऐसा करने पर यह बाल-कमानी को फिर बाँध देता है, जिससे वह फिर

फिरे। इस प्रकार वह इधर से उधर घूमती है, और हर बार इस्केपमेण्ट के पहिये को क्षण-भर के लिये पकड़ती है। इस प्रकार सारे पहियों की गति मध्यम होजाती है, और खास कमानी जल्दी-से नहीं खुल पाती। घड़ी के दाँतेदार पहियों को बड़ी सावधानी से बनाया जाता है, जिससे समय बताने मे गड़बड़ी न हो।

निशानेबाज़ मछली



संसार में जितने जन्तु हैं, वे सब अनेक अनोखे ढंग से अपनी-अपनी आजीविका प्राप्त करते हैं, किन्तु एक छोटी मछली अपना भोजन प्राप्त करने के लिये जो तरकीब काम में लाती है, वह विलक्षण है। यह मछली दक्षिणी ऑस्ट्रेलिया की नदियों के मुहानों मे पायी जाती है, और ईस्ट-इण्डीज की नदियों मे भी मिलती है।

यह मछली अपने शिकार की ताक में रहती है। शिकार प्राय मक्खियाँ ही होती हैं। जब मछली देखती है, कि नदी के किनारे उगे हुए पौधों की पत्तियों पर कोई मक्खी या मकौड़ा बैठा है, तो वह चुपचाप उसके पास जाती है, और मुँह मे पानी भरकर कुल्ले का ठीक निशाना ऐसे ज़ोर से मारती है, कि वह मकौड़ा फौरन् पानी में गिर पड़ता है। उसके गिरते ही वह फौरन् आगे बढकर और मुँह खोलकर उस मकौड़े को निगल जाती है। इस मछली का निशाना शायद ही कभी चूकता है।

पहले हमें यह जानने की जरूरत है, कि यह शक्ति है क्या चीज ? अगर पानी से भरा हुआ गोल बर्तन लेकर उसे एक जगह स्थिर रखकर गोलाई में तेजी से घुमाएँ, तो अन्दर का पानी भी गोलाकार घूमते हुए क्रमशः बर्तन के किनारों पर ऊपर को उठने लगेगा, और अन्ततः वह उसके किनारे से बाहर जा गिरेगा।

जब तक पानी बर्तन के किनारों को छूता रहेगा, तब तक अन्दर रहता है, पर जब वह उससे ऊपर पहुँच जाता है, तो उसकी कोई रोक न होने के कारण वह तरल-जल बर्तन से छलककर काफ़ी दूरी पर जा गिरता है। यह वही 'उड़ानेवाली' शक्ति है, जो पानी को इस रूप से छलकाती है। इसका परीक्षण हम कहीं भी करके देख सकते हैं।

अब दूसरा परीक्षण कीजिए। एक रस्सी के सिरे पर गेंद या पत्थर का टुकड़ा बाँधकर उसे घुमाइये। वह गेंद या पत्थर गोलाकार घूमेगा, लेकिन अगर यकायक रस्सी टूट जाय, या हम उसे छोड़ दें, तो गेंद या पत्थर गोलाकार घूमने के बजाय अपनी सीधी लाइन में जा गिरेगा। यह उसी 'उड़ानेवाली शक्ति' का काम है, जो उसे उधर ले जाती है, पर जब तक हम रस्सी को पकड़े रहते हैं, तब तक दूसरी शक्ति, जिसे 'मध्याकर्षक शक्ति' कहते हैं, इसे गोलाकार घूमने के लिये बाध्य रखती है, और उसे गिरकर दूर नहीं जा पड़ने देती।

हम देखते हैं, कि जब हम गेंद को गोलाकार घुमाते हैं, तो हमें रस्सी को खींचे रखना पड़ता है, जिससे वह गेंद या पत्थर वृत्त के बाहर न जा सके। इस परीक्षण से मतलब क्या निकला?

सर आइज़क न्यूटन एक बड़े विद्वान् होगये हैं। उन्होंने पहले-पहल आकर्षण-शक्ति (खींचनेवाली ताक़त) का पता लगाया था। हम जानते हैं, कि जब हम गाड़ी में इंजन की तरफ़ मुँह करके सफ़र कर रहे होते हैं, तो यकायक इंजन के रुक जाने पर हम आगे को झुक पड़ते हैं। दूसरी तरफ़ अगर कोई गाड़ी स्टेशन पर खड़ी रहती है, और सहसा चल पड़ती है, तो हम पीछे की तरफ़ लुढक पड़ते हैं। इससे हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं, कि जब कोई चीज़ गति में होती है, तो वह उसी दिशा में चलती रहना चाहती है, जिधर वह जा रही होती है, और अगर वह स्थिर होती है, तो वह स्थिर ही रहना चाहती है। न्यूटन ने इसी बात को इस रूप में कहा है—"प्रत्येक व्यक्ति (या वस्तु) अपनी स्थिरता की या सीधी और निश्चित चाल की दशा में ही रहा करता है, जब तक कि कोई बाहरी शक्ति उसे बाध्य करके उसकी वह अवस्था बदल नहीं देती।"

स्थिर को गति देने, और गतिवान को रोकने की इस शक्ति को, जो प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक वस्तु में होती

जडता' कह सकते हैं। हर बार जब गाडी को चलाते या कते हैं, तो हमे इस 'जडता' को काबू मे करना पड़ता है।

अब हम यह समझ सकते हैं, कि बर्तन का पानी माने पर किनारे से बाहर क्यों जा पडता है, और गेद पत्थर रस्सी में बाँधकर घुमाये जाने पर छूटते ही लग क्यों जा पडता है। जब हम रस्सी को घुमाते हैं, ो ज्योंही पत्थर हमारे खिंचाव (आकर्षण) से छूटता है, वह पनी सीधी लाइन में गिर-जा सकता है, पर वह ऐसा सलिये नहीं कर सकता, कि रस्सी उसे हमारे हाथ की ओर चे रखती है। रस्सी से छूटते ही पत्थर या गेद उस दिशा जा गिरता है, जिधर वह छूटने के वक्त पहुँचा होता है।

यही बात पानी से भरे हुए बर्तन के लिये भी लागू ोती है। जब हम बर्तन को घुमाते हैं, तो पानी भी घूमने गता है, और पानी की हरेक बूँद अपनी सीधी लाइन में ा गिरती, यदि बर्तन के किनारे उसे रोक न रखते। ऊपर ुला होने के कारण वह पानी ऊँचा उठता है, और अन्त ं किनारे से बाहर जा गिरता है। इसलिये 'उडाने-ाली' शक्ति, केन्द्र या मध्य से उडानेवाली शक्ति न होकर क ऐसी ताक़त है, जो एक चीज के चारों ओर घूमनेवाली सभी चीजों को बाहरी स्पर्श-रेखा, अर्थात् गोले की परिधि की सीध में जानेवाली रेखा की ओर उडा ले जाने की शक्ति रखती है।

रस्सी और पत्थर के उदाहरण में इस शक्ति की रोक मध्याकर्षक शक्ति-द्वारा होने की बात समझायी गई है, किन्तु ज्योंही वह (मध्याकर्षण) शक्ति काम करना बन्द कर देती है, यानी रस्सी टूट या छूट जाती है, 'उडानेवाली शक्ति' अकेले अपना काम करती है।

अब यह बिल्कुल स्पष्ट होगया, कि तेज दौडनेवाली मोटरों की गोलाकार दौड के लिये सडक थोडी टेढाईवाली क्यों होनी चाहिये। यदि 'उड़ानेवाली' शक्ति से मोटर और साइकिलों को सडक से बाहर गिरा देने से बचाना हो, तो वह इस ढंग से बनी होनी चाहिये, जिससे 'उडानेवाली' शक्ति को रोकनेवाली ताक़त भी काम करे। यह बात रस्सी और पत्थर-जैसी ही है—फर्क इतना ही है, कि वहाँ पत्थर को बाहर न गिरने देने के लिये उसे रस्सी खींचती है, और यहाँ गाडी के सडक से बाहर न जाने देने के लिये 'उडानेवाली शक्ति' की रोक के रूप में हम गाडी को केन्द्र की ओर मोडते हैं।

रेल की सडक भी इसी प्रकार मोड पर थोडी टेढाई के साथ बनाई जाती है। सरकस के खेलों में हम लोग देखते हैं, कि एक साइकिलवाला एक बिल्कुल ही गोल दायरेवाले सीधे रक्खे हुए गोले के बीच में साइकिल दौड़ाता है। यह 'उडानेवाली शक्ति' ही है, जिसके कारण वह नीचे नहीं गिर पडता।

'जडता' कह सकते हैं। हर बार जब गाडी को चलाते या रोकते हैं, तो हमें इस 'जडता' को काबू में करना पड़ता है।

अब हम यह समझ सकते हैं, कि बर्तन का पानी घुमाने पर किनारे से बाहर क्यों जा पडता है, और गेंद या पत्थर रस्सी मे बाँधकर घुमाये जाने पर छूटते ही अलग क्यों जा पडता है। जब हम रस्सी को घुमाते हैं, तो ज्योंही पत्थर हमारे खिंचाव (आकर्षण) से छूटता है, वह अपनी सीधी लाइन में गिर-जा सकता है, पर वह ऐसा इसलिये नहीं कर सकता, कि रस्सी उसे हमारे हाथ की ओर खींचे रखती है। रस्सी से छूटते ही पत्थर या गेंद उस दिशा मे जा गिरता है, जिधर वह छूटने के वक्त पहुँचा होता है।

यही बात पानी से भरे हुए बर्तन के लिये भी लागू होती है। जब हम बर्तन को घुमाते हैं, तो पानी भी घूमने लगता है, और पानी की हरेक बूँद अपनी सीधी लाइन मे जा गिरती, यदि बर्तन के किनारे उसे रोक न रखते। ऊपर खुला होने के कारण वह पानी ऊँचा उठता है, और अन्त में किनारे से बाहर जा गिरता है। इसलिये 'उडाने-वाली' शक्ति, केन्द्र या मध्य से उड़ानेवाली शक्ति न होकर एक ऐसी ताकत है, जो एक चीज के चारों ओर घूमनेवाली सभी चीजों को बाहरी स्पर्श-रेखा, अर्थात् गोले की परिधि की सीध में जानेवाली रेखा की ओर उडा ले जाने की शक्ति रखती है।

रस्सी और पत्थर के उदाहरण में इस शक्ति की रोक मध्याकर्षक शक्ति-द्वारा होने की बात समझायी गई है, किन्तु ज्योंही यह (मध्याकर्षण) शक्ति काम करना बन्द कर देती है, यानी रस्सी टूट या छूट जाती है, 'उड़ानेवाली शक्ति' अकेले अपना काम करती है।

अब यह बिल्कुल स्पष्ट होगया, कि तेज दौड़नेवाली मोटरों की गोलाकार दौड़ के लिये सड़क थोड़ी टेढ़ाईवाली क्यों होनी चाहिये। यदि 'उड़ानेवाली' शक्ति से मोटर और साइकिलों को सड़क से बाहर गिरा देने से बचाना हो, तो वह इस ढंग से बनी होनी चाहिये, जिससे 'उड़ानेवाली' शक्ति को रोकनेवाली ताक़त भी काम करे। यह बात रस्सी और पत्थर-जैसी ही है—फ़र्क इतना ही है, कि वहाँ पत्थर को बाहर न गिरने देने के लिये उसे रस्सी खींचती है, और यहाँ गाड़ी के सड़क से बाहर न जाने देने के लिये 'उड़ानेवाली शक्ति' की रोक के रूप में हम गाड़ी को केन्द्र की ओर मोड़ते हैं।

रेल की सड़क भी इसी प्रकार मोड़ पर थोड़ी टेढ़ाई के साथ बनाई जाती है। सरकस के खेलों में हम लोग देखते हैं, कि एक साइकिलवाला एक बिल्कुल ही गोल दायरेवाले सीधे रक्खे हुए गोले के बीच में साइकिल दौड़ाता है। यह 'उड़ानेवाली शक्ति' ही है, जिसके कारण वह नीचे नहीं गिर पड़ता।

'जडता' कह सकते हैं। हर बार जब गाडी को चलाते या रोकते हैं, तो हमे इस 'जडता' को काबू मे करना पडता है।

अब हम यह समझ सकते हैं, कि बर्तन का पानी घुमाने पर किनारे से बाहर क्यों जा पडता है, और गेद या पत्थर रस्सी मे बाँधकर घुमाये जाने पर छूटते ही अलग क्यों जा पडता है। जब हम रस्सी को घुमाते हैं, तो ज्योंही पत्थर हमारे खिचाव (आकर्षण) से छूटता है, वह अपनी सीधी लाइन में गिर-जा सकता है, पर वह ऐसा इसलिये नहीं कर सकता, कि रस्सी उसे हमारे हाथ की ओर खीचे रखती है। रस्सी से छूटते ही पत्थर या गेद उस दिशा में जा गिरता है, जिधर वह छूटने के वक्त पहुँचा होता है।

यही बात पानी से भरे हुए बर्तन के लिये भी लागू होती है। जब हम बर्तन को घुमाते हैं, तो पानी भी घूमने लगता है, और पानी की हरेक बूँद अपनी सीधी लाइन में जा गिरती, यदि बर्तन के किनारे उसे रोक न रखते। ऊपर खुला होने के कारण वह पानी ऊँचा उठता है, और अन्त में किनारे से बाहर जा गिरता है। इसलिये 'उडाने-वाली' शक्ति, केन्द्र या मध्य से उड़ानेवाली शक्ति न होकर एक ऐसी ताकत है, जो एक चीज के चारों ओर घूमनेवाली सभी चीजों को बाहरी स्पर्श-रेखा, अर्थात् गोले की परिधि की सीध में जानेवाली रेखा की ओर उड़ा ले जाने की शक्ति रखती है।

रस्सी और पत्थर के उदाहरण मे इस शक्ति की रोक मध्याकर्षक शक्ति-द्वारा होने की बात समझायी गई है, किन्तु ज्योंही वह (मध्याकर्षण) शक्ति काम करना बन्द कर देती है, यानी रस्सी टूट या छूट जाती है, 'उडानेवाली शक्ति' अकेले अपना काम करती है।

अब यह बिल्कुल स्पष्ट होगया, कि तेज़ दौडनेवाली मोटरों की गोलाकार दौड के लिये सडक थोडी टेढाईवाली क्यों होनी चाहिये। यदि 'उडानेवाली' शक्ति से मोटर और साइकिलों को सडक से बाहर गिरा देने से बचाना हो, तो वह इस ढग से बनी होनी चाहिये, जिससे 'उडानेवाली' शक्ति को रोकनेवाली ताक़त भी काम करे। यह बात रस्सी और पत्थर-जैसी ही है—फ़र्क़ इतना ही है, कि वहाँ पत्थर को बाहर न गिरने देने के लिये उसे रस्सी खींचती है, और यहाँ गाडी के सडक से बाहर न जाने देने के लिये 'उडानेवाली शक्ति' की रोक के रूप में हम गाडी को केन्द्र की ओर मोड़ते हैं।

रेल की सडक भी इसी प्रकार मोड पर थोडी टेढाई के साथ बनाई जाती है। सरकस के खेलों मे हम लोग देखते हैं, कि एक साइकिलवाला एक बिल्कुल ही गोल दायरेवाले सीधे खडे हुए गोले के बीच मे साइकिल दौड़ाता है। यह 'उड़ानेवाली शक्ति' ही है, जिसके कारण वह नीचे नहीं गिर पडता।

हमें याद रखना चाहिए, कि जिस गोल पृथ्वी पर हम रहते हैं, यह सदा तेज चाल से गोलाकार घूमती रहती है। भूमध्य-रेखा पर यह चाल हजार मील प्रति घण्टे होजाती है, और अगर पृथ्वी मे आकर्षण-शक्ति न होती, तो पृथ्वी पर रहनेवाले सभी जीवधारी और सभी चीजे लुढककर आकाश मे चले जाती। उडने की सब से अधिक सम्भावना भूमध्य-रेखा पर होती है, और ध्रुवों की ओर कम होती जाती हे। पर जिम जगह हम लोग यह पुस्तक पढ रहे हैं, यहाँ उडने की सम्भावना इतनी अधिक है, कि हम, हमारी कुर्सियाँ, हमारा मकान और सडक पर चलनेवाली सभी गाडियाँ-आदि जमीन से लुढक पडती। आकर्षण-शक्ति मध्याकर्षण का काम करती है, और यह जमीन के घूमती रहने के कारण 'उडानेवाली' शक्ति की रोक का काम करती हे।

हमे यह भी स्मरण रखना चाहिये, कि 'उडानेवाली' शक्ति भूमध्य-रेखा पर, दोनों ध्रुवों की अपेक्षा हमारे शरीर का वजन कम कर देती है, क्योंकि वहाँ उसकी शक्ति अधिक काम कर पाती है। वैज्ञानिकों ने हिसाब लगाया है, कि ध्रुवों की अपेक्षा भूमध्य-रेखा पर शरीर का वजन $\frac{१}{२८९}$ कम होजाता है। अगर जमीन की चाल सत्रह-गुनी बढ जाय, तो भूमध्य-रेखा पर किसी चीज का कोई वजन ही नहीं रहेगा। यह वजन जब हम ध्रुवों की ओर चलते

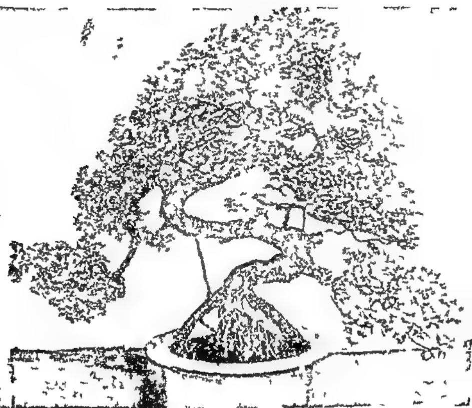
हैं, तो इसलिये बढ़ता जाता है, कि उससे 'उड़ाने-वाली' शक्ति कम होती जाती है। कारण यह है, कि ध्रुवों का स्थान पृथ्वी के केन्द्र से भूमध्य-रेखा की अपेक्षा कुछ अधिक निकट है, इसलिये खिंचाव अधिक होने के कारण वजन भी बढ़ता जाता है।

जिन लोगों ने नये-नये आविष्कार किये हैं, उन्होंने प्राय इस बात की चेष्टा की है, कि आकर्षण-शक्ति पर क़ाबू रक्खा जाय। पर जहाँ तक सारी पृथ्वी के आकर्षण का सम्बन्ध है, वे कभी इस काम में सफल नहीं हुए हैं।

तरह पौदों को भी खूराक की जरूरत होती है। वगै
खाने के न-तो कोई जानवर या पौदा बढ सकता है, न उस-
से लाभ उठाया जा सकता है। इसमें शक नहीं, कि जान-
वरों और पौदों के खाने के ढग अलग-अलग हैं—क्योंकि
जानवर तो ऐसा खाना खाता है, जो खाने ही पचना शुरू
होजाता है, पर पौदा ऐसे पदार्थ को अपने अन्दर खींचता
है, जो उसके शरीर मे जाकर तब खाने के रूप में बनता
है, और फिर वह उसे पचाता है। पर रीति भिन्न होते हुए
भी पौदों और जानवरों के पोषण करनेवाले पदार्थों का
सार लगभग एक ही-सा होता है।

पौदे हमेशा जानवरों ही की तरह बढते हैं—दोनों ही
के शरीर छोटे-छोटे परमाणुओं के बने होते हैं, और इनके
शरीर केवल उन्ही परमाणुओं के बडे होने पर नहीं,
बल्कि उनकी सख्या-वृद्धि पर भी निर्भर करते हैं।

जानवरों की भाँति पौदों के पास भी अपने दुश्मनों से
बचने के लिये साधन या हथियार होते हैं। आदमी अपने
हाथ से अपनी रक्षा करता है, बिल्ली और शेर अपने पंजे
से करते हैं, कुत्ता अपने दाँतों से अपने को बचाता है,
साँप अपने विषैले दाँतों से। इसी प्रकार चिचिडा या
अपामार्ग पौदा अपने छोटे-छोटे दानों-द्वारा, जो उसे
छेडने पर मनुष्यों के कपडों मे चिपक जाते हैं,
अपनी रक्षा करता है। गुलाब और नागफनी



कुबड़ा पेड़

का पौदा अपने जहरीले काँटों-द्वारा अपने को बचाता है। ये सभी पौदे उनसे उसी प्रकार हथियार का काम लेते हैं, जैसे मनुष्य अपने हाथों से, बिल्ली पंजों से, तथा कुत्ता और साँप दाँतों से लेता है।

पौदों की लडाई भी जानवरों ही की लडाई की तरह भयानक होती है। एक या दो महीने तक फुलवाडी में कोई काम न किया जाय, तो बडे-बडे जंगली पौदे—नागर-मोथा-आदि उगकर उन फूलों के पौदों को मार देते हैं, जो फुलवाडी की मिट्टी के पैदा हुए न होकर बाहरी होते हैं। बात यह है कि वह उस वातावरण या पड़ोस से लडने के योग्य नहीं होते। हम प्राय देखते हैं कि बहुत-सी लताएँ और बेल वृक्षों पर चढकर उन्हीं पर जड जमाकर उनसे खूराक हासिल करती हैं, जिनसे वे वृक्ष कमजोर होकर मर तक जाते हैं।

जिस तरह जानवरों मे नर और मादा होते हैं, उसी प्रकार पौदों मे भी नर और मादा होते हैं, जिनसे बच्चों की तरह पौदों का जन्म होता है।

बच्चों का पालन

जिस तरह जानवरों के माता-पिता बच्चों की देख-रेख करते हैं, उसी प्रकार पौदे भी करते हैं। कभी-कभी यह अपने बच्चे (बीज) की रक्षा करता है, जिससे दुश्मन उसे नष्ट न कर सके।

है। कितने ही वृक्ष अपने बीजों को दूर फेककर, या रेशों के साथ हवा मे उडाकर उन्हें सुरक्षित रूप में जमीन पर गिरने देकर उनके जमीन पर उगने का सामान सुरक्षित कर देते हैं।

जानवर एक खास समय तक काम करने के बाद आराम चाहते हैं। इसी प्रकार पौदे भी साधारणत: दिन में ही काम करते हैं—यानी जमीन से अपनी खूराक खींचकर उन्हें खाने के रूप में बनाते हैं। सूर्यास्त के बाद वे अपना काम बन्द कर देते हैं, और जिस तरह जानवर सोते हैं, वैसे ये भी आराम करते हैं।

जानवरों की तरह पौदे भी आपस में खूब स्पर्द्धा करते हैं, और अन्त में वही जीतकर जड जमा लेता है, जो सब से मजबूत होता है।

अगर हम इन बातों को याद रक्खे, तो पौदों के साथ भी वैसा-ही-व्यवहार करने लगेंगे, और उन्हें न सतायेंगे, तथा जिस प्रकार हम जानवरों या बच्चों के साथ करते है, फूलों के साथ भी वैसी ही दयालुता का व्यवहार करेंगे।

आधी रात की धूप।



जमीन के घूमती रहने के कारण गर्मी मे उत्तरी ध्रुव का प्रदेश सूरज की तरफ घूम जाता है, जिसका परिणाम यह होता है कि चूँकि पृथ्वी उत्तरी ध्रुव-प्रदेशवाला अश अपनी धुरी पर नहीं घुमाती, इसलिये वह भाग सूरज से ओझल नहीं होता है। आधी रात के समय भी सूरज आकाश मे चमकता दिखायी दे सकता है। चौबीसों घण्टे वहाँ दिन की-सी रोशनी रहती है। यात्री लोग प्राय नॉर्वे में नॉर्थकेप-नामक स्थान में जाकर आधी रात का सूर्य देखा करते हैं। निस्सन्देह जाडे में उत्तरी ध्रुव का प्रदेश सूरज की ओर से घूम जाता है, और उस प्रदेश के अन्दर कई महीने तक लम्बी रातें हुआ करती हैं। किन्तु उस समय दक्षिणी ध्रुव सूरज की तरफ घूमता है, और उन दिनों दक्षिणी ध्रुव के प्रदेश मे आधी रात को सूरज दिखायी दे सकता है।

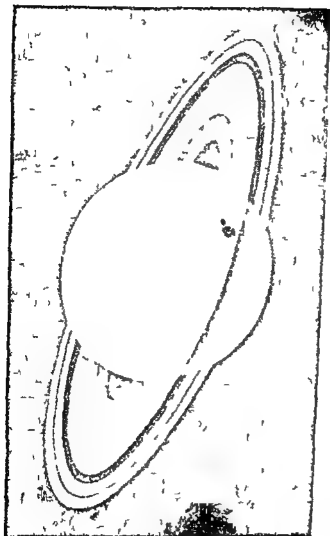


एक दुनियाँ में दस करोड़ चाँद

—·०· ०·—

साल में किसी-किसी मौके पर जब हम आसमान की ओर देखते हैं, तो हमें एक बडा और चमकीला तारा ऐसा छोटा और धुँधला नजर आयेगा कि उसे पहचानने के लिये अन्य तारागणों मे और उसमें कोई अन्तर ही नही मालूम पडेगा। पर खगोल-विद्या के जाननेवाले हमे यह बतायेंगे कि यह शनि तारा है, और अगर वे हमें इस तारे को दूरबीन मे दिखा सकें, तो हमे एक विलक्षण दृश्य दीखेगा। बजाय अन्य ग्रहों की तरह गोलाकार दीखने के यह तारा जमीन से भी अधिक चौडी शक्ल में दिखायी देगा। साथ ही उसके चारों ओर बडे-बडे चौडे गोलों की लडी दिखायी देगी।

शनि की ओर प्राय देखते रहने से वह हमेशा इसी रूप मे नहीं दिखायी देता, क्योंकि हम कभी उसके पास-वाले गोलों को नीचे, कभी ऊपर और कभी किनारे खिसका हुआ देखते हैं। यह विलक्षण सत्य है, कि—ये गोले बहुत चौडे होते हुए भी—उनकी कुल चौडाई लगभग ४०,००० मील है—पतले बहुत कम (प्राय केवल सौ मील) हैं। उनकी आकृति इस तरह की है, जैसे



शनि और उसके दस करोड़ चन्द्रमा।

मोटे कागज की एक बड़ी अँगूठी काटकर नारंगी के बीच में पहना देने पर होती है।

शनि ग्रह का पता बहुत पुराने समय में लगा था। किन्तु सन् १६१० ई० में गैलीलियो ने अपनी दूरबीन लगाकर उसमें कुछ आश्चर्यजनक बातें देखीं। "यह मुझे तिहरा दीखता है," उसने उस समय लिखा था—"सब से बड़ा तारा बीच में है, और बाकी दो में से एक पूरब और एक पच्छिम की ओर बराबर फ़ासले पर हैं। और ऐसा मालूम होता है कि ये बीचवाले तारे को छूते हैं। ये दो नौकरों की तरह बुड्ढे शनि की मदद करते और उसका सफर पूरा करवाते मालूम होते हैं, तथा वे वहाँ से सरकते नहीं।"

खगोलवेत्ता की परेशानी

किन्तु वास्तव में शनि के अगल-बगलवाले दोनों गोले सरकते थे, क्योंकि गैलीलियो ने देखा, कि दो वर्ष में वे छोटे होते-होते बिल्कुल गायब होगये। वह इससे बहुत घबराया, और इसका भेद कुछ भी नहीं समझ सका। "मैं नहीं जानता, कि ऐसी आश्चर्यजनक, अप्रत्याशित और नयी बात के लिये क्या कहा जाय," उसने लिखा—"समय की कमी, मेरी समझ की कमजोरी, और गलती के भय ने मुझे हक्का-बक्का बना दिया है।"

किन्तु उस महान् खगोल-वेत्ता ने ग़लती नहीं की

वाद में इस (शनि) ग्रह् मे फिर अद्भुत गोले आ मिले, और यद्यपि शुरू में उन्हें सहायक चन्द्रमा समझा गया, और इस ग्रह् मे मूठ-सी लगी दिखायी देने लगी, पर इन गोलों का वास्तविक रूप १६५६ ई० मे प्रसिद्ध डच खगोल-विद् क्रिश्चियन ह्राइजेन्स ने मालूम किया। यह एक ऐसा असाधारण आविष्कार था, जिसे ह्राइजेन्स को पहले-पहले घोषित करने तक की हिम्मत नहीं हुई, इसलिये उसने अपने आविष्कार को एक अनोखे ढग से प्रकट किया—जैसा किसी भी वैज्ञानिक सत्य को नहीं किया गया था। उसने अपने आविष्कार को इस रूप मे लिखा—अ अ अ अ अ अ अ क क क क क ड इ इ इ इ इ ग ह्-ई ई ई ई ई ई ई ल ल ल ल म म न न न न न न न न न ओ ओ ओ ओ प प क र र स ट ट ट ट ट ड ड ड ड ड। वास्तव में यह एक गुप्त लेख था, जिसके लैटिन सङ्केत का मतलब यह था—"उसके चारों ओर एक पतली, चौडी अँगूठी-सी है, जो उसे कहीं छूती नहीं और वह सूर्य-मार्ग की ओर झुकती प्रतीत होती है।"

सूर्य-मार्ग एक बहुत बडे गोलाकार वृत्त को कहते है, जिसे प्रकटतया सूर्य का रास्ता माना गया है, किन्तु वह वास्तव में वह मार्ग है, जिसे यदि सूर्य के ग्रह पर से देखा जाता, तो पृथ्वी उसके पीछे चलती दीखती।

कितने ही अन्य खगोल-विदों ने शनि और

अँगूठीनुमा चक्र का अध्ययन किया है, और इन ग्रह के सम्बन्ध में हम जितना ही अधिक जानते हैं, उतना ही वह आश्चर्य का विषय बनता जा रहा है। यह सूरज से ८,८६० लाख मील के औसत फासले पर घूमता है। जब यह सूर्य से ज्यादा-से-ज्यादा दूरी परी पर पहुँच जाता है, तब यह फासला १०,०२८ लाख मील पर पहुँच जाता है, पर जब वह करीब-से-करीब फासले पर आजाता है, तो दूरी ७,७४० लाख मील रह जाती है। इससे स्पष्ट है कि इस ग्रह का रास्ता गोलाकार न होकर अण्डाकार है।

जमीन की तरह यह ग्रह भी ध्रुवों पर चौड़ा है, पर ऐसा अधिकतर इसलिये है कि उसका अर्द्धव्यास ७६,५०० मील है, और ध्रुवों से उसका फ़ासला केवल ६९,८०० मील है। वास्तव में शनि अन्य सभी ग्रहों की अपेक्षा ध्रुवों पर अधिक चौड़ा है, क्योंकि भूमध्य-रेखा से ध्रुवों की अपेक्षा अर्द्धव्यास दशमांश अधिक है।

शनि का धरातल पृथ्वी का ८६ गुना है, और वह पृथ्वी से ८०० गुनी जगह घेरता है। किन्तु क़द में इतना बड़ा होते हुए भी वह वजन में पृथ्वी से उतना गुना अधिक नहीं है, जितना होना चाहिये। यह सच है कि उसका वजन जमीन से ९५ गुना है, पर यह अगर हमारी पृथ्वी के बराबर होता, तो वह केवल पृथ्वी का $\frac{१}{८}$ भारी होता है। इस प्रकार शनि का वजन उतना ही है, जितना उतने बड़े

अखरोट की लकडी के बने हुए गोले का होता, और अगर वह पानी के अत्यन्त विशाल पात्र मे डाल दिया जाता, तो उसका चौथाई हिस्सा पानी के ऊपर तैरता रहता। वास्तव मे जिस पदार्थ से शनि का निर्माण हुआ है, वह अन्य सब ग्रहों के निर्माण-पदार्थ से हल्का है।

शनि की लम्बी यात्रा

शनि हर घण्टे मे अपनी धुरी पर घूम जाता है, और २९॥ साल मे वह सूर्य का पूरा चक्कर लगा लेता है। उसकी चाल एक सेकण्ड में ६ मील है।

जमीन से शनि का फासला बराबर घटता-बढता रहता है, और १५ साल मे इसकी चमक आधे के लगभग घट या बढ़ जाती है। जब वह जमीन से अधिक-से-अधिक करीब आजाता है, तो वह लगभग २१० गज के फासले पर सामने रक्खे हुए अठन्नी के सिक्के के बराबर दिखायी देता है।

शनि सूर्य से आनेवाली रोशनी के प्रतिबिम्ब से चमकता दिखायी देता है, किन्तु उस ग्रह को हमारी जमीन की अपेक्षा सूर्य से केवल $\frac{१}{९०}$ गर्मी और रोशनी मिलती है। यह ग्रह जमीन की तरह ठण्डा नहीं हुआ है, और सम्भवत बहुत अधिक गर्म है। हम उसके चारों ओर जो पट्टी-सी देखते हैं, उसका कारण यह समझा गया है, कि उसके धरातल पर बादल हैं। हमें दूरबीन से जो कुछ दिखाई देता है,

यह उसका असली धरातल नहीं, बादलों से ढका हुआ उसका वातावरण होता है।

जिस तरह हमारी जमीन से एक चाँद दिखाई देता है, उसी प्रकार शनि से नौ चाँद दिखाई देते हैं, और कुछ खगोल-विदों का विचार है कि चाँदों की संख्या नौ की बजाय दस है। इनमें से अधिकांश का तो इस बीसवीं सदी में ही आविष्कार हुआ है। शनि से जो चाँद सब से अधिक फासले पर है, उसका नाम है, फोयबा। यह शनि से ८,०००,००० मील की दूरी पर है। दूसरा चाँद आइपेटस है, जो शनि से २,२२५,००० मील के फासले पर है। सब से बड़ा चाँद है, टीटन—जिसका व्यास २,७२० मील, या हमारे चन्द्रमा से कुछ बड़ा है, और यह शनि से ७७०,००० मील के फासले पर चक्कर लगाता है।

अँगूठीनुमा गोलों का रहस्य

किन्तु इस ग्रह की सब से बड़ी आश्चर्यजनक चीज हैं, इसके अँगूठीनुमा गोले। आरम्भ में यह सोचा गया था, कि यह ठोस वस्तु के बने हुए हैं, किन्तु कुछ वैज्ञानिकों का कथन है कि वे तरल भी हो सकते हैं। किन्तु हिसाब लगाकर देखने पर मालूम होता है कि वे न तो बराबर ठोस ही बने रहते हैं, न तरल ही, क्योंकि ऐसा होने पर ग्रह के चारों ओर घूमते समय जो प्रबल खिंचाव पड़ता है, उससे उनके टुकड़े-टुकड़े हो जाते।

अब इस बात पर सब सहमत होगये हैं, कि वे
अँगूठीनुमा गोले ऐसे छोटे-छोटे चन्द्रमाओं के मि
बने हैं, जिन्हें 'जेबी चन्द्रमा' कह सकते हैं। गणित के
रिक्त हम इसे इसलिये भी इस रूप में मानते हैं कि
विश्लेपक यन्त्र से यह देखा गया है, कि अँगूठीनुमा
का बाहरी भाग भीतरी भाग की अपेक्षा अधिक मन्द
से घूमता है। यदि ये गोले संयुक्त होते, तो ऐसा न
इस विशाल जगत और इसके दस करोड़ या
भी अधिक चन्द्रमाओं पर विचार करना कैसे चम
की बात है। चन्द्रमाओं के विराट् झुण्ड की इस अँगू
प्रत्येक चन्द्रमा इतना क़रीब है कि सब मिलकर ए
अँगूठी का रूप धारण कर लेते हैं। आकाश में स
अधिक आश्चर्य की चीज़ शनि की यह अँगूठी है।

इस अँगूठी के तीन पतले और चौड़े हिस्से हैं,-
बाहरी चमकीला हिस्सा, जिसकी चौडाई १२,०००
है। इसके बाद दूसरा हिस्सा है, जिसका आविष्कार कै
महोदय ने किया था, और जो १८९० मील चौड़ा है।
बाद तीसरी अँगूठी है, जो इनमें सब से अधिक चम
और १७,००० मील चौड़ी है। सब के बाद पारदर्शी अर्द्ध
है, जिसकी चौड़ाई ११,००० मील है। इस अँगूठी के भी
किनारे और शनि के बीच ७,००० से ८,००० मील
अन्तर रह जाता है।

शनि ग्रह के एक वर्ष में—अर्थात् हमारे साल से २९॥ गुने समय में, अँगूठियाँ दो वार किनारे की ओर घूमती हैं, और दो वार पूरी चौडाई के साथ घूमती दीखती हैं। जिस समय किनारों की ओर से घूमती हैं, तो वे लगभग अदृश्य हो जाती हैं, और जब पहले-पहल खगोल-विदों ने उसे देखा, तो उनका यह खयाल हुआ कि इस ग्रह में एक विशाल छेद, एक-दिशा से दूसरी दिशा तक निकला हुआ है।

अँगूठीनुमा गोले कैसे बने? साधारणतः यह विश्वास किया जाता है, कि किसी समय वे एक बहुत बडे चन्द्रमा के रूप में थे, और यह चन्द्रमा जब शनि के अधिक निकट पहुँचा, तो उसके टुकडे-टुकडे होगये, और वह टुकडे इस ग्रह के चारों ओर उसी प्रकार घूमने लगे, जैसे सूर्य के सब ग्रह उसके चारों ओर घूमते हैं। सर जेम्स जीन के विचार में एक समय ऐसा आयेगा, जब हमारा चन्द्रमा पृथ्वी के इतना करीब आजायगा कि उसका भी यही हाल होगा, और फिर हमारी पृथ्वी के चारों ओर एक चन्द्रमा न होकर वैसे ही अँगूठीनुमा गोले घूमने लगेंगे, जैसे शनि के चारों ओर घूमते हैं। किन्तु इस घटना की सम्भावना बहुत ही दूर-भविष्य में है।

बिना चन्द्रमा की पृथ्वी।

जब यह घटना घटित होगी, तो उसका परिणाम बड़ा

ही अनोखा होगा। पृथ्वी के पास फिर कोई चन्द्रमा नहीं होगा, किन्तु उस समय की रात अब की अपेक्षा अधिक प्रकाशयुक्त होगी, क्योंकि वे अँगूठीनुमा गोले सूर्य से अधिक रोशनी प्राप्त करके उसका प्रतिविम्ब वर्तमान चाँद की अपेक्षा पृथ्वी पर अधिक भेज सकेंगे, और सारी रात प्रकाश रहेगा, क्योंकि वे अँगूठियाँ पृथ्वी के सारे हिस्सों को घेरे रहेंगी। इस समय चन्द्रमा कभी-कभी दिन में दीखता है, जिसके कारण रात को उसका प्रतिविम्ब पृथ्वी पर नहीं पड़ता।

साधारणतः लोगों का खयाल है कि शनि ग्रह के इन अँगूठीनुमा गोलों की चौड़ाई पहले की अपेक्षा कम होती जा रही है। किन्तु अभी जब तक इनका अध्ययन बहुत समय तक नहीं हो लेता, इसका निश्चय नहीं किया जा सकता।

बिल्ली के नौ अवतार

— ०ꕥ० —

चूहे की दुश्मन बिल्ली भारत के घर-घर में पायी जाती है। बिल्ली के घर में घुसते ही चूहे छू-मन्तर की तरह भाग जाते हैं, और इस प्रकार बिल्ली चूहों से हमारे अन्न और खाने-पीने की चीजों की रक्षा करती है। पालतू बिल्ली बड़ी ही सीधी और डरपोक होती है, और जब तक उसे दिक करके मजबूर न कर दिया जाय, तब तक वह चूहों के अलावा और किसी जानवर पर हमला नहीं करती। झल्लाने पर वह अपने तेज पंजों को खोलकर अपनी रक्षा अच्छी तरह कर लेती है।

बिल्ली की विशेषता

बिल्ली जब अपने पंजों को मोड़ लेती है, तो उसके पैर अत्यन्त कोमल होजाते हैं। यहाँ तक कि उसके चलने की जरा भी आवाज सुनायी नहीं दे सकती, और वह ऐसी सफ़ाई से चलती है, कि दो खम्भों में बँधी हुई रस्सी पर से सरलतापूर्वक गुजर सकती है। उसकी आँखों की बनावट ऐसी होती है कि रोशनी में उसकी पुतली सिकुड़ी रहती है, और अँधेरे में फैल जाती है। परिणाम यह होता है, कि वह अँधेरे में सरलता से देख सकती है। बिल्ली की श्रवण-

शक्ति आदमी की श्रवण-शक्ति से बहुत तेज होती है। यह इतने दूर की और धीमी-से-धीमी आवाज सुन लेती है, जिसे मनुष्य कभी नहीं सुन सकता।

बिल्ली की एक और विशेषता यह है, कि उसकी मूँछें उसके लिये चेतावनी का काम देती हैं। किसी तग जगह में घुसते समय वह अपनी मूँछों से ही उस जगह को माप लेती है, कि उस तङ्ग रास्ते या खिडकी में-से होकर वह अन्दर जा सकती है या नहीं। इसी प्रकार चिडियों और चूहे-आदि का पीछा करते समय ये मूँछें उसे यह मदद देती हैं, कि वह शिकार की तरफ दृष्टि जमाकर रास्ते को देखे बिना ही दौड सकती है। साथ ही इन मूँछों में चेतना अनुभव करने की शक्ति भी होती है।

बिल्ली की जबान खुरदरी होती है, जिससे वह मास-मछली बडे सुभीते से खा सकती है। वह अपने शरीर को भी जबान से ही चाटकर साफ रखती है। उसे सफाई बहुत पसन्द होती है।

बिल्ली के सम्बन्ध में सब से दिलचस्प बात यह है, कि यह बडी ऊँचाई से गिरने पर भी कभी चोट नहीं खाती। वह चाहे अकस्मात् गिरे, या जान बूझकर, पर गिरेगी सदा पाँवों के ही बल पर। इसका कारण यह है कि अगर हम किसी बिल्ली को ऊँची खिडकी-झरोखे या अन्य ऊँची जगह से गिरते देखें, तो हमें मालूम हो जायगा, कि फिस-

नाटकों की अपेक्षा बोलते फिल्मों में एक बड़ी उपयोगिता यह है, कि अच्छे से-अच्छे अभिनेताओं और अभिनेत्रियों के सुन्दर, नवरसयुक्त अभिनय, कलावन्तों के हृदयहारी गायन और वाद्य तथा देश-विदेशों के नयनाभिराम दृश्य सिनेमा-घरों में बैठे-बैठे केवल चार आने खर्च कर देख सकते हैं। वास्तव में यह एक अत्यन्त सस्ता मनोरञ्जन है, और इसमें इतने अधिक और आश्चर्यजनक दृश्यों का समावेश होता है, जितने नाटक दिखलानेवाली कम्पनियों के खयाल में भी नहीं आ सकते थे।

बोलते फिल्मों की इस वर्द्धित ख्याति के साथ यह भी स्वाभाविक है कि दर्शकों के मन में यह इच्छा उत्पन्न हो, कि आखिर ये फ़िल्म बनाये किस प्रकार जाते हैं, जिनमें अभिनय के साथ-साथ आवाज़ भी इतनी शुद्ध, साफ और यथार्थ रूप में निकलती है।

यहाँ हम चित्र देकर यह बतलाने की चेष्टा करेंगे, कि बोलते फ़िल्म किस प्रकार बनाये जाते हैं, और फिर तैयार होजाने पर सिनेमाघरों में उन्हें किस प्रकार दिखाया जाता है।

इन पृष्ठों में हम देखेंगे कि बोलते फ़िल्म (सवाक्-चित्रपट) किस प्रकार बनते और दिखलाये जाते हैं। एक दृश्य के हज़ारों चित्र फ़िल्म पर फ़ोटो की तरह उतारे जाते हैं, जिनमें एक-दूसरे में बहुत थोड़ा अन्तर होता है।

बोलता हुआ फ़िल्म कैसे तैयार किया जाता है ?



आज सारे हिन्दुस्थान मे बोलते हुए फिल्मों की धूम है। प्रत्येक बडे शहर और क़स्बे मे इसका प्रदर्शन ज़ोरों पर है। इस धन्धे ने नाटक दिखलानेवाली कम्पनियों का तो दिवाला ही निकाल दिया है, और अब सारे भारत में केवल दो-ही-एक ऐसी कम्पनियाँ रह गई हैं, जो नाटक दिखाती हैं। इधर बोलते फिल्म दिखलानेवाले सिनेमा-घरों की सख्या दिनों-दिन बढती जा रही है। इसके देखने का शौक भी इतना बढता जा रहा है, कि उच्च और मध्यम-श्रेणी के लोगों की तो बात ही क्या है, निम्न श्रेणी क आदमी—ताँगेवाले, कुली, मजदूर—यहाँ तक कि भिखमँगे तक इसे देखने का लोभ सवरण नही कर सकते। भारत में बोलते फिल्म तैयार करने के लिये अनेक अच्छी कम्पनियाँ खुल गई हैं, जिनके प्रधान कार्य-क्षेत्र बम्बई, कलकत्ता और लाहौर हैं। भारत मे आमदनी के लिहाज़ से इस व्यवसाय का नम्बर पाँचवाँ है, और दिन-पर-दिन इसमे और भी उन्नति होती जा रही है।

नाटकों की अपेक्षा बोलने फिल्मों में एक बड़ी उपयोगिता यह है, कि अच्छे से-अच्छे अभिनेताओं और अभिनेत्रियों के सुन्दर, नयरमयुक्त अभिनय, कलावन्तों के हृदयहारी गाना और बाजा तथा देश विदेशों के नयनाभिराम दृश्य सिनेमा-घरों में बैठे-बैठे केवल चार आने खर्च-कर देख सकते हैं। वास्तव में यह एक अत्यन्त सस्ता मनोरञ्जन है, और इसमें इतने अधिक और आश्चर्यजनक दृश्यों का समावेश होता है, जितने नाटक दिखलानेवाली कम्पनियों के खयाल में भी नहीं आ सकते थे।

बोलते फिल्मों की इस बढ़ित ख्याति के साथ यह भी स्वाभाविक है कि दर्शकों के मन में यह इच्छा उत्पन्न हो, कि आखिर ये फ़िल्म बनाये किस प्रकार जाते हैं, जिनमें अभिनय के साथ-साथ आवाज़ भी इतनी शुद्ध, साफ़ और यथार्थ रूप में निकलती है।

यहाँ हम चित्र देकर यह बतलाने की चेष्टा करेंगे, कि बोलते फ़िल्म किस प्रकार बनाये जाते हैं, और फिर तैयार होजाने पर सिनेमाघरों में उन्हें किस प्रकार दिखाया जाता है।

इन पृष्ठों में हम देखेंगे कि बोलते फ़िल्म (सवाक्-चित्रपट) किस प्रकार बनते और दिखलाये जाते हैं। एक दृश्य के हजारों चित्र फ़िल्म पर फ़ोटो की तरह उतारे जाते हैं, जिनमें एक-दूसरे में बहुत थोड़ा अन्तर होता है।

बिजली की रोशनी से ये फ़िल्म लेंस-नामक पारदर्शक शीशे के सामने निश्चित गति से दौड़ाये जाते हैं, और चित्र खिंचता जाता है। साथ-ही-साथ दृश्य की आवाज़ माइक्रोफ़ोन-द्वारा भरी जाती है, जहाँ हवा में लहराकर आवाज़ 'डायफ्रॉम' को कँपाती है, और उसके बहुत-से कायलों (तारा के छोटे-छोटे गुच्छों) को हिलाती है, जिनमें से होकर बिजली का करेंट (प्रवाह) जाता रहता है। इस प्रकम्पन से बिजली का प्रवाह घटता-बढ़ता रहता है, और इस प्रकार आवाज़ विभिन्न विद्युत्प्रवाह के रूप में परिवर्तित हो जाती है। यह बिजली का क़रेंट (प्रवाह) एक विस्तारक यन्त्र में होकर जाता है, जहाँ इसे एक ख़ास और आवश्यक हद तक निश्चित कर दिया जाता है, और आवाज़ भरनेवाले यन्त्र से यह तार जोड़ दिये जाते हैं। उस यन्त्र में एक रोशनी का दरवाज़ा होता है, जिसमें छेद होता है। इस छेद में होकर रोशनी की किरण जाती है, और यह किरण-बिन्दु फ़िल्म के किनारे पर डाली जाती है। करेंट के घटने-बढ़ने से छेद इस प्रकार खुलता और बन्द होता है, कि उस रोशनी के जाने का मार्ग चौड़ा और पतला होता रहता है। इसका परिणाम यह होता है कि फ़िल्म पर विभिन्न मोटाई या गहराई की रेखा बनती जाती है। दो (अभिनय और आवाज़ के) निगेटिव फ़िल्मों से एक ऐसा पॉज़िटिव फ़िल्म तैयार किया जाता है, जिसमें

चित्र और आवाज दोनों ही होते हैं। सिनेमा-घरों में यह फ़िल्म एक मशीन में बिजली-द्वारा दौडाया जाता है, जिससे प्रति सेकण्ड लेस के सामने ९० चित्र आते हैं। प्रत्येक चित्र केवल क्षण-भर के लिये आता है, क्योंकि शटर उन्हें घुमाता रहता है। पर्दे पर चूँकि एक के बाद दूसरा चित्र अत्यन्त वेग से आता है, इसलिये दर्शकों को ऐसा मालूम होता है कि क्रिया लगातार जारी है। जिस समय फ़िल्म मशीन में दौड़ता है, फ़िल्म के किनारेवाली रेखा पर रोशनी की किरण दौडती है, और उसका प्रकाश-बिन्दु एक फोटो-इलेक्ट्रिक के गढे में पडता है, जो प्रकाश की गहराई या हल्केपन को बिजली की घट-बढ़ के रूप मे परिवर्तित कर देता है। इसे विस्तृत करके इसमें तार लगा-कर लाउड-स्पीकर या ध्वनि-विस्तारक यन्त्र में ले जाते हैं, जहाँ वह आवाज के रूप मे बदल जाता है। जिस मशीन की प्रणाली का यहाँ वर्णन् किया गया है, वह 'वेस्टर्न-इलेक्ट्रिक'-प्रणाली कहलाती है।

बिजली की रोशनी से ये फ़िल्म लेंस-नामक पारदर्शक शीशे के सामने निश्चित गति से दौड़ाये जाते हैं, और चित्र खिंचता जाता है। साथ-ही-साथ दृश्य की आवाज़ माइक्रोफ़ोन-द्वारा भरी जाती है, जहाँ हवा में लहराकर आवाज़ 'डायफ्रॉम' को कँपाती है, और उसके बहुत-से कायलों (तारा के छोटे-छोटे गुच्छों) को हिलाती है, जिनमें से होकर बिजली का करेंट (प्रवाह) जाता रहता है। इस प्रकम्पन से बिजली का प्रवाह घटता-बढता रहता है, और इस प्रकार आवाज़ विभिन्न विद्युत्प्रवाह के रूप में परिवर्तित हो जाती है। यह बिजली का करेंट (प्रवाह) एक विस्तारक यन्त्र में होकर जाता है, जहाँ इसे एक ख़ास और आवश्यक हद तक निश्चित कर दिया जाता है, और आवाज़ भरनेवाले यन्त्र से यह तार जोड़ दिये जाते हैं। उस यन्त्र में एक रोशनी का दरवाज़ा होता है, जिसमें छेद होता है। इस छेद में होकर रोशनी की किरण जाती है, और यह किरण-बिन्दु फ़िल्म के किनारे पर डाली जाती है। करेंट के घटने-बढ़ने से छेद इस प्रकार खुलता और बन्द होता है, कि उस रोशनी के जाने का मार्ग चौड़ा और पतला होता रहता है। इसका परिणाम यह होता है कि फ़िल्म पर विभिन्न मोटाई या गहराई की रेखा बनती जाती है। दो (अभिनय और आवाज़ के) निगेटिव फ़िल्मों से एक ऐसा पॉज़िटिव फ़िल्म तैयार किया जाता है, जिसमें

चित्र और आवाज दोनों ही होते हैं। सिनेमा-घरों मे यह फ़िल्म एक मशीन मे बिजली-द्वारा दौड़ाया जाता है, जिससे प्रति सेकण्ड लेंस के सामने ९० चित्र आते हैं। प्रत्येक चित्र केवल क्षण-भर के लिये आता है, क्योंकि शटर उन्हे घुमाता रहता है। पर्दे पर चूँकि एक के बाद दूसरा चित्र अत्यन्त वेग से आता है, इसलिये दर्शकों को ऐसा मालूम होता है कि क्रिया लगातार जारी है। जिस समय फ़िल्म मशीन में दौड़ता है, फ़िल्म के किनारेवाली रेखा पर रोशनी की किरण दौड़ती है, और उसका प्रकाश-बिन्दु एक फोटो-इलेक्ट्रिक के गढे में पड़ता है, जो प्रकाश की गहराई या हल्केपन को बिजली की घट-बढ़ के रूप में परिवर्तित कर देता है। इसे विस्तृत करके इसमे तार लगाकर लाउड-स्पीकर या ध्वनि-विस्तारक यन्त्र में ले जाते हैं, जहाँ वह आवाज के रूप में बदल जाता है। जिस मशीन की प्रणाली का यहाँ वर्णन किया गया है, वह 'वेस्टर्न-इलेक्ट्रिक'-प्रणाली कहलाती है।

प्राची दिशि शशि उगेउ सुहावा।
सिय-मुख-सरिस देखि सुख पावा॥

इसके अतिरिक्त चन्द्रमा की किरणों मे वह गुण है, जो स्वभावत आँखों के लिये प्रिय और लाभदायक है। उसकी ओर देखते-देखते हमारी आँखे कभी तृप्त नहीं होतीं। मन मे आता है, कि चन्द्रमा की शीतलता को आँखों के रास्ते पी जायँ। उसकी ओर देखकर मन कभी अघाता ही नही।

हमारी पृथ्वी के चारों ओर जो अनन्त आकाश फैला हुआ है, उसमे असख्य ग्रह-उपग्रह और तारे भरे पडे हैं, जिनमे से अधिकाश की आकृति प्रज्वलित गोलों की-सी होती है। इनमे से अधिकतर ऐसे हैं, जिनकी रोशनी जमीन तक पहुँचने मे न-केवल वरसों, बल्कि हजारों वरस लग जाते हैं। रोशनी की चाल प्रति सेकण्ड १८६,००० मील है। इसी से अनुमान लगाया जा सकता है, कि वे हमसे कितनी दूरी पर हैं।

किन्तु इनमे से एक ग्रह ऐसा है, जो पृथ्वी से औरों की अपेक्षा वहुत-ही निकट है। उसकी दूरी हमारी पृथ्वी की परिधि की दूरी से केवल दस-गुनी है—या अगर हमारी जमीन के वरावर की तीस जमीने वरावर-वरावर एक-दूसरी से मिलती हुई रख दी जायँ, तो हमारी जमीन और उसके बीच में पुल वन जा सकता है। वह ग्रह है,

चन्द्रमा। केवल यही ग्रह ऐसा है, जिसके सम्बन्ध में हम लोग काफ़ी ज्ञान रखते हैं। बहुत बड़ी दूरबीन से देखने पर चन्द्रमा का धरातल हमारे इतना निकट दिखाई देता है, कि अगर उसमें दिल्ली की जामा मसजिद-जैसी कोई विशाल इमारत होती, तो साफ़ देखी जा सकती थी। यहाँ तक कि हम वहाँ की फ़ौजें और ऊँटों के कारवान तक देख सकते थे।

यदि आकाश में चाँद ही चाँद होते

पर चन्द्रमा में पहली चीज जो हम बिना दूरबीन लगाये ही देख लेते हैं, वह उसकी चमकीली सतह है, जो रात को हमारी जमीन में सुन्दर रोशनी फेंकती है। यह ग्रह सूर्य की तरह आग का गोला नहीं है, यह एक मृतक संसार, या जैसाकि कुछ लोगों ने कहा है, मुर्दा ग्रह—है, जो आकाश में घूम रहा है।

सवाल यह उठता है, कि अगर चन्द्रमा मृतक है, तो वह हमें ऐसी तेज रोशनी कैसे देता है? बात यह है कि यह रोशनी वास्तव में चन्द्रमा की रोशनी नहीं है, बल्कि सूर्य की जो रोशनी चन्द्रमा पर पड़ती है, उसका प्रतिबिम्ब है, जो हमारी पृथ्वी पर पड़कर ऐसा नजर आता है, कि मानो रोशनी उसी में से निकल रही है।

रात का घुप अँधेरा देखते हुए वास्तव में चन्द्रमा से आया हुआ यह प्रकाश बहुत चमकीला होता है, किन्तु

वास्तव में ऐसे ६००,००० चन्द्रमा मिलकर अगर पृथ्वी पर रोशनी फेंके, तब वह सूर्य की बराबरी का प्रकाश दे सकता है। अगर सारा आकाश चन्द्रमाओं से भरा होता, तो हमें सूर्य के अष्टमांश से अधिक प्रकाश नहीं मिल सकता था। यह बात अनोखी है, कि जिस समय (सप्तमी या अष्टमी को) चन्द्रमा का आकार आधा रह जाता है, तो हमें उतनी रोशनी नहीं मिलती, जो पूर्ण चन्द्र (पूर्णमासी) के प्रकाश की आधी कही जा सके। इसका कारण यह है, कि चन्द्रमा के धरातल पर अनेक कई ऐसी छाया हैं, जो उसकी रोशनी को घटा देती हैं।

चन्द्रमा पर सूर्य की रोशनी का केवल छठा हिस्सा पड़ता है, और उसी का प्रतिबिम्ब वह पृथ्वी पर डालता है। पूर्णमासी के चन्द्रमा की रोशनी हिसाब से उतनी मानी गई है, जितनी सौ बत्ती की ताक़तवाली रोशनी के हण्डे को २२ गज के फ़ासले पर रखने से होती है।

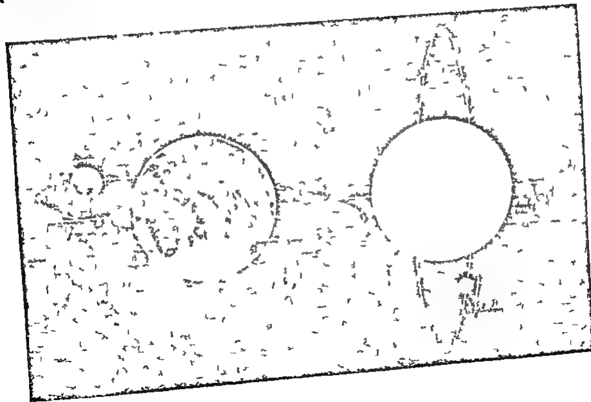
चन्द्रमा को मुर्दा और ठण्डा ग्रह इसलिये कहा जाता है, कि इसमें से गर्मी नहीं निकलती, पर चूँकि इसे सूर्य की रोशनी मिलती है, इसलिये वह न-केवल प्रकाश का ही प्रतिबिम्ब डालता है, वरन् साथ ही वह कुछ गर्मी भी छोड़ता है। उसका धरातल भी सूर्य की कुछ गर्मी जज्ब कर लेता है, और बाद में उसे इसी प्रकार छोड़ता है, जैसे ईंट या पत्थर की दीवार दिन की

धूप से तप्त होने के बाद रात को गर्मी फेकती हैं।

चन्द्रमा के सम्बन्ध मे इस प्रकार का ज्ञान कि वह गर्मी भी फेकता है, मनुष्य को गत शताब्दी मे ही हुआ है। बहुत बडे और शक्तिशाली लेस के शीशे में चन्द्रमा की किरणों का तापक्रम एकत्रित करने पर अत्यन्त बारीक थर्मामीटर (उष्णिमा-मापक यन्त्र) से भी उसकी गर्मी नही नापी जा सकती। थर्मामीटर की अपेक्षा अधिक बारीकी से गर्मी नापनेवाला यन्त्र थर्मोपाइल है, और इसके द्वारा वैज्ञानिक हमे बताते हैं, कि पूर्णमासी के चन्द्रमा के प्रकाश से जितनी गर्मी पृथ्वी को मिलती है, वह सूर्य से पृथ्वी को मिलनेवाली गर्मी का $\frac{१}{१८४०००}$ है।

किन्तु चन्द्रमा के धरातल पर गर्मी और सर्दी का आश्चर्यजनक अन्तर है। जब सूर्य उसके धरातल पर रोशनी फेंकता है, तो उसकी तापक्रम २०० डिग्री (फॉरेन-हाइट) के ऊपर पहुँच जाती है। कभी-कभी तो वह २४४ डिग्री तक पहुँची है, जो पानी खौलने की गर्मी से भी ३२ डिग्री अधिक है। किन्तु चन्द्रमा के धरातल के जिस छाया-दार भाग पर सूर्य की रोशनी नहीं पडती, उसके सम्बन्ध मे सर जेम्स जीन का कथन है, कि वहाँ की सर्दी सम्भवत शून्य से २४४ डिग्री नीचे रहती है, अर्थात् वहाँ २७६ डिग्री की ठण्ड पडती है। इस प्रकार चन्द्रमा के दिन और रात में ४८८ डिग्री (फॉरेनहाइट) का अनुक्रम है। किन्त

विश्व-विहार—



धूप से तप्त होने के बाद रात को गर्मी फेकती हैं।

चन्द्रमा के सम्बन्ध मे इस प्रकार का ज्ञान कि वह गर्मी भी फेकता है, मनुष्य को गत शताब्दी मे ही हुआ है। बहुत बडे और शक्तिशाली लेंस के शीशे मे चन्द्रमा की किरणों का ताप्क्रम एकत्रित करने पर अत्यन्त बारीक थर्मामीटर (उष्णिमा-मापक यन्त्र) से भी उसकी गर्मी नही नापी जा सकती। थर्मामीटर की अपेक्षा अधिक बारीकी से गर्मी नापनेवाला यन्त्र थर्मोपाइल है, और इसके द्वारा वैज्ञानिक हमे बताते हैं, कि पूर्णमासी के चन्द्रमा के प्रकाश से जितनी गर्मी पृथ्वी को मिलता है, वह सूर्य से पृथ्वी को मिलनेवाली गर्मी का $\frac{१}{१८५०००}$ है।

किन्तु चन्द्रमा के धरातल पर गर्मी और सर्दी का आश्चर्यजनक अन्तर है। जब सूर्य उसके धरातल पर रोशनी फेंकता है, तो उसकी तापक्रम २०० डिग्री (फॉरेनहाइट) के ऊपर पहुॅच जाती है। कभी-कभी तो वह २४४ डिग्री तक पहुॅची है, जो पानी खौलने की गर्मी से भी ३२ डिग्री अधिक है। किन्तु चन्द्रमा के धरातल के जिस छायादार भाग पर सूर्य की रोशनी नहीं पडती, उसके सम्बन्ध में सर जेम्स जीन का कथन है, कि वहाँ की सर्दी सम्भवत शून्य से २४४ डिग्री नीचे रहती है, अर्थात् वहाँ २७६ डिग्री की ठण्ड पडती है। इस प्रकार चन्द्रमा के दिन और रात में ४८८ डिग्री (फॉरेनहाइट) का अनुक्रम है।

तापक्रम जिस शीघ्रता से घटता है, वह आश्चर्यजनक है।

अमेरिका के दो खगोलविदों ने चन्द्र-ग्रहण के समय चन्द्रमा के धरातल को देखकर मालूम किया है, कि जब पृथ्वी की छाया सूर्य की गर्मी काटकर चन्द्रमा के धरातल को पार कर गई है, तो कुछ ही मिनटों में ताप-क्रम ३४६ पर गिर गया। वास्तव में चन्द्र-लोक हम लोगों के रहने-योग्य स्थान नही हो सकता।

इसका कारण क्या है कि चन्द्रमा की गर्मी-सर्दी में इतना अधिक और शीघ्रतापूर्ण परिवर्तन होता है? इसका कारण जहाँ तक हम समझते हैं, यह है कि इस ग्रह में कियात्मक रूप से कोई वायु-मण्डल नही है। इसका पता कई कारणों से लगा है। चन्द्र-मण्डल के किनारे का कुछ भाग ऐसा ऊसर और सपाट है, जो किसी वायु-मण्डल के होने पर नहीं हो सकता था। न वहाँ किसी प्रकार का कुहरा और धुन्ध ही है, जो वायु-मण्डल के होने पर अवश्य होना चाहिये। चन्द्रमा पर स्थित पहाड़ों और ज्वालामुखी पर्वतों की छाया पूर्णत काली है, जैसीकि वायु-युक्त धरातल पर नहीं होनी चाहिए।

चन्द्रमा का वायु-मण्डल

यदि चन्द्रमा में किसी प्रकार का वायु-मण्डल होता, तो वह इतनी सफ़ाई और बारीकी से नहीं देखा जा सकता था। दूसरा प्रमाण यह है, कि जब चन्द्रमा हमारे और

तारों के बीच में होकर गुजरता है, तो वह (तारा) तुरन्त चन्द्रमा के किनारे से छिप जाता है। अगर चन्द्रमा में वायु-मण्डल होता, तो तारा धीरे-धीरे अन्धकार में लुप्त होता, क्योंकि तब चन्द्रमा के वायु-मण्डल पर तारे की किरणें टेढे रूप में पड़तीं।

वायु-मण्डल के ही कारण हमारी पृथ्वी के धरातल पर सूर्य से आयी हुई गर्मी रुकती है, और जल्दी निकल नहीं जाती। इस प्रकार हमारा वातावरण लगभग एक-सा रहता है, और हमें यकायक ऐसी भयानक गर्मी या सर्दी का सामना नहीं करना पड़ता, जैसी वायु-मण्डल न होने के कारण चन्द्रमा पर पड़ती है।

चन्द्र-लोक में वायु-मण्डल न होने का दूसरा परिणाम यह हुआ है, कि वह एक शान्त संसार है, क्योंकि बिना हवा या ऐसी गैस के, जो आवाज की लहरों को ले जा सके, वहाँ कोई आवाज हो ही नहीं सकती।

इस चन्द्रमा का आकार क्या है—जो पृथ्वी के सूर्य के चारों ओर घूमने में उसका साथ देता है? यह जमीन की अपेक्षा आकार और वजन दोनों ही में बहुत छोटा है। इसमें सन्देह नहीं, कि आस्मान में चन्द्रमा सूर्य के बराबर दीखता है, पर इसका कारण यह है, कि वह सूर्य की अपेक्षा हमारे अत्यन्त निकट है। सूर्य का व्यास ८६७,००० मील का है, और चन्द्रमा का केवल २,१६३ मील, जो

जमीन के व्यास के चतुर्थांश से कुछ ही अधिक है। चन्द्रमा को यदि एटलाण्टिक महासागर में डाल दिया जाय, तो उसके छोर यूरोप या अमेरिका तक नहीं पहुँच सकेंगे।

पृथ्वी कई चन्द्रमाओं के बराबर है।

चन्द्रमा का आकार पृथ्वी से इतना छोटा है, कि एक पृथ्वी को बराबरी ४९ चन्द्रमा मिलकर कर सकते हैं, और आकार में बराबर हो जाने पर भी इतने चन्द्रमाओं का वजन पृथ्वी के वजन का $\frac{3}{5}$ होगा, क्योंकि चन्द्रमा पर स्थित पहाड़ ऐसे ठोस और वजनी नहीं हैं, जैसे जमीन के। वास्तव में यद्यपि पृथ्वी आकार में ४९ चन्द्रमाओं के बराबर है, पर वजन में चन्द्रमा से ८१ गुनी है। चन्द्रमा का क्षेत्रफल पृथ्वी का तेरहवाँ हिस्सा ही। केवल उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका का क्षेत्रफल चन्द्रमा के क्षेत्रफल से अधिक है।

दूरबीन लगाकर केवल आँखों से देखने पर भी चन्द्रमा का धरातल विषम दीखता है। दूरबीन से तो उसकी विषमता और भी स्पष्ट दीख जाती है। अगर हम माउण्ट-विल्सन, (अमेरिका) के १००[illegible] रिफ्लेक्टर की दूरबीन से [illegible] चन्द्रमा का [illegible] दीखता है। इस दूरबी[illegible] यह ग्रह ही मीलों के फासले प[illegible] और ८५

धरातल हमें वैसा ही दीखेगा, जैसा हवाई जहाज पर चढ़-कर कुछ मीलों की ऊँचाई से देखने पर हमारी पृथ्वी दीखती है। इस दूरबीन से चन्द्रमा के रेगिस्तान में चलती हुई फौज तक देखी जा सकती है, और दिल्ली की जामा-मसजिद उसमें एक छोटे बिन्दु-सरीखी दीखेगी। ज्वालामुखी पहाड़ों के मुँह स्पष्ट दीख जाते हैं।

किन्तु आकार में छोटा और घनत्व में कम होने के कारण चन्द्रमा में पृथ्वी की अपेक्षा आकर्षण-शक्ति बहुत कम है। जो चीज़ हमारी पृथ्वी पर बारह सेर वजन की होगी, उसका वजन चन्द्र-लोक में केवल दो सेर रह जायगा। कोई आदमी या घोड़ा चन्द्र-लोक में यहाँ की अपेक्षा छः गुना काम कर सकता है।

उदाहरण के लिये अगर यहाँ कोई आदमी एक मन वजन उठाकर ले जा सकता है, तो वह चन्द्र-लोक में छः मन उठा ले जा सकता है, अगर वह यहाँ चार फ़ीट कूद सकता है, तो वहाँ वह उतने ही परिश्रम से चौबीस फ़ीट कूद सकता है, यहाँ अगर उसके शरीर का वजन डेढ़ मन है, तो वहाँ उसका वजन कुल दस सेर रह जायगा। किन्तु वायु-मण्डल और पानी न होने पर चन्द्र-लोक में आदमी जीवित नहीं रह सकेगा। वहाँ आग भी नहीं जलाई जा सकेगी, क्योंकि बिना हवा या ऑक्सीजन के आग नहीं जल सकती। [illegible] होगी।

जमीन के व्यास के चतुर्थांश से कुछ ही अधिक है। चन्द्रमा को यदि एटलाण्टिक महासागर में डाल दिया जाय, तो उसके छोर यूरोप या अमेरिका तक नहीं पहुँच सकेंगे।

पृथ्वी कई चन्द्रमाओं के बराबर है।

चन्द्रमा का आकार पृथ्वी से इतना छोटा है, कि एक पृथ्वी की बराबरी ४९ चन्द्रमा मिलकर कर सकते हैं, और आकार मे बराबर हो जाने पर भी इतने चन्द्रमाओं का वजन पृथ्वी के वजन । का $\frac{३}{५}$ होगा, क्योंकि चन्द्रमा पर स्थित पहाड ऐसे ठोस और वजनी नहीं हैं, जैसे जमीन के। वास्तव मे यद्यपि पृथ्वी आकार मे ४९ चन्द्रमाओं के बराबर है, पर वजन मे चन्द्रमा से ८१ गुनी है। चन्द्रमा का क्षेत्रफल पृथ्वी का तेरहवाँ हिस्सा ही। केवल उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका का क्षेत्रफल चन्द्रमा के क्षेत्रफल मे अधिक है।

दूरबीन लगाकर केवल आँखों से देखने पर भी चन्द्रमा का धरातल विषम दीखता है। दूरबीन से तो उसकी विषमता और भी स्पष्ट दीख जाती है। लेकिन अगर हम माउण्ट-विल्सन, (अमेरिका) के १०० इञ्चवाले रिफ्लेक्टर की दूरबीन से देखें, तो चन्द्रमा का दृश्य अद्भुत दीखता है। इस दूरबीन से देखने पर यह ग्रह हमसे कुछ ही मीलों के फासले पर रह जायगा है, और तब चन्द्रमा का

धरातल हमें वैसा ही दीखेगा, जैसा हवाई जहाज पर चढ़कर कुछ मीलों की ऊँचाई से देखने पर हमारी पृथ्वी दीखती है। इस दूरबीन से चन्द्रमा के रेगिस्तान में चलती हुई फौज तक देखी जा सकती है, और दिल्ली की जामा-मसजिद उसमें एक छोटे बिन्दु-सरीखी दीखेगी। ज्वालामुखी पहाड़ों के मुँह स्पष्ट दीख जाते हैं।

किन्तु आकार में छोटा और घनत्व में कम होने के कारण चन्द्रमा में पृथ्वी की अपेक्षा आकर्षण-शक्ति बहुत कम है। जो चीज हमारी पृथ्वी पर बारह सेर वजन की होगी, उसका वजन चन्द्र-लोक में केवल दो सेर रह जायगा। कोई आदमी या घोड़ा चन्द्र-लोक मे यहाँ की अपेक्षा छ गुना काम कर सकता है।

उदाहरण के लिये अगर यहाँ कोई आदमी एक मन वजन उठाकर ले जा सकता है, तो वह चन्द्र-लोक में छ मन उठा ले जा सकता है, अगर वह यहाँ चार फ़ीट कूद सकता है, तो वहाँ वह उतने ही परिश्रम से चौबीस फ़ीट कूद सकता है, यहाँ अगर उसके शरीर का वजन डेढ़ मन है, तो वहाँ उसका वज़न कुल दस सेर रह जायगा। किन्तु वायु-मण्डल और पानी न होने पर चन्द्र-लोक में आदमी जीवित नहीं रह सकेगा। वहा आग भी नहीं जलाई जा सकेगी, क्योंकि बिना हवा या ऑक्सीजन के आग

सदी के अन्त मे गुब्बारे का आविष्कार हुआ, तो दुनियाँ यह निश्चय हुआ कि जल्दी या देर मे मनुष्य गुब्बारों के द्वारा चन्द्रमा तक पहुँच सकेगा। किन्तु यह विचार इस आधार पर कायम किया गया था, कि पृथ्वी और चन्द्रमा के बीच का रिक्त स्थान ऐसे वायु-मण्डल से पूरित है, जिसमे गुब्बारा उड़ सकता है।

अब हम इससे अधिक ज्ञान रखते हैं, किन्तु अब भी चन्द्र-लोक की यात्रा की सम्भावना का समर्थन किया गया है। यद्यपि इस बार यात्रा गुब्बारे मे न करके गोले-द्वारा करने का विचार किया गया है, किन्तु इस समय इस साधन का भी क्रियात्मक रूप में लाना सम्भव नहीं है॥

तारे क्यों और कैसे टूटते हैं ?

—० ०—

बरसात के बाद जब आकाश खूब साफ रहता है, रात को किसी खुले स्थान में जाकर यदि हम आकाश की ओर देखा करें, तो हमें आकाश-मण्डल में कभी-कभी यकायक प्रकाश की बड़ी रेखा खिंच-उठती दिखायी देगी, जिससे यह मालूम होता है, कि कोई तारा टूटकर एक स्थान से दूसरे स्थान को गया है। देहात मे इसे 'लुक' टूटना कहते हैं।

किन्तु वास्तव में टूटनेवाले ये प्रकाश-विन्दु तारे नहीं हैं, क्योंकि तारे तो सूर्य की तरह तपते हैं। ये तारे तो तारे न होकर टुकडे-मात्र हैं, जिनमे से कुछ तो मटर की फली या अखरोट के बराबर होते हैं।

हमे इन टूटते हुए सितारों के सम्बन्ध में कुछ जानकारी प्राप्त करने की आवश्यकता इसलिये है, कि अभी तक बहुत-से लोग नही जानते कि ये हैं क्या। गाँवों में तो यहाँ तक अन्ध-विश्वास फैला हुआ है, कि बहुत-से लोग डर
टूटते तारों की ओर नही देखते, और समझते हैं
मनुष्य का जीव है, जो एक लोक से
इसलिये हमें यहाँ यह बताने की



तारा टूटने का दृश्य

तारे क्यों और कैसे टूटते हैं ?

—○ ○—

बरसात के बाद जब आकाश खूब साफ रहता है, रात को किसी खुले स्थान में जाकर यदि हम आकाश की ओर देखा करें, तो हमें आकाश-मण्डल में कभी-कभी यकायक प्रकाश की बड़ी रेखा खिच-उठती दिखायी देगी, जिससे यह मालूम होता है, कि कोई तारा टूटकर एक स्थान से दूसरे स्थान को गया है। देहात में इसे 'लूक' टूटना कहते हैं।

किन्तु वास्तव में टूटनेवाले ये प्रकाश-विन्दु तारे नहीं हैं, क्योंकि तारे तो सूर्य की तरह तपते हैं। ये तारे तो तारे न होकर टुकड़े-मात्र हैं, जिनमें से कुछ तो मटर की फली या अखरोट के बराबर होते हैं।

हमें इन टूटते हुए सितारों के सम्बन्ध में कुछ जानकारी प्राप्त करने की आवश्यकता इसलिये है, कि अभी तक बहुत-से लोग नहीं जानते कि ये हैं क्या। गाँवों में तो यहाँ तक अन्ध-विश्वास फैला हुआ है, कि बहुत-से लोग डर के मारे टूटते तारों की ओर नहीं देखते, और समझते हैं कि यह किसी मनुष्य का जीव है, जो एक लोक से दूसरे लोक को जाता है। इसलिये हमें यहाँ यह बतलाने की आवश्यकता है कि ये ...

जो प्रकाश की बहुत बड़ी रेखा पीछे छोडते हुए आकाश में टूटते हैं, पृथ्वी के अपनी धुरी पर सूर्य के गिर्द घूमने के कारण उसकी ओर गिरते हैं। इनकी चाल एक सेकण्ड मे दस से तीस मील तक होती है। शायद इनकी औसत-रफ़्तार २५ मील प्रति सेकण्ड होती है।

हवा की रुकावट

पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति के कारण यह टूटता सितारा वायु मण्डल की ओर दौडता है, तो हवा उसमें रुकावट डालती है, और उसकी चाल में बाधा पडने के कारण सुस्ती आजाती है। परिणाम यह होता है, कि वह पत्थर का टुकडा सफेद और तप्त रूप में जमीन से देखनेवालों को दिखलायी देता है। जब यह पहले-पहल दीखता है, तो साधारणत जमीन से ७४ मील की दूरी पर होता है, और जब वह पृथ्वी से ५० मील के फ़ासले पर रह जाता है, तो वह फिर नहीं दिखायी देता।

वह इस प्रकार अदृश्य क्यों हो जाता है? इसका कारण यह है, कि जब वह वेग के साथ हमारे वायु-मण्डल में घुसता है, तो उसमें इतनी गर्मी पैदा हो जाती है, कि वह जल उठता है। इस प्रकार उसका कुछ अश तो गैस में चला जाता है, और बाक़ी साफ़ राख के रूप में जमीन पर गिर पडता है।

आकाश में अग्नि-वर्षा

साल के खास मौसिमों में ये टूटने तारे एक न दिखायी देकर समूह के रूप में दिखायी दे जाते हैं। थोड़ी-थोड़ी देर में ही ये अधिक संख्या में दिखाई पड़ते हैं, जिनमें लगभग सभी आकाश के एक भाग में प्रज्वलित हो जाते हैं, और ऐसा मालूम होता है कि आकाश में आग बरस रही है।

आकाश में दीखनेवाले ये टूटते सितारे एक नहीं, अनेक प्रकार के होते हैं। इनमें कुछ की रोशनी पीलापन और लालिमा लिये हुए होती है, तो कुछ की सफेद कुछ ऐसे भी होते हैं, जिनकी रोशनी में हरियाली और नीलापन मिला होता है। यह रंग का अन्तर उन दिशाओं पर निर्भर है, जिधर से ये टूटने तारे हमारे वायु-मण्डल में प्रवेश करते हैं।

टूटते तारों का पथ

हम जानते हैं, कि तीस मील फी घण्टा की रफ़ार से दौड़नेवाली रेलगाड़ी के पीछे से अगर दूसरी गाड़ी पचास मील फी घण्टा की चाल से आकर टकरा जाय, तो इस दुर्घटना का परिणाम वैसा ही होगा, जैसा एक खड़ी हुई गाड़ी के पीछे से बीस मील फी घण्टा की रफ़ारवाली गाड़ी के टकरा जाने से होता। दूसरी तरफ अगर पचास मील फी घण्टा जानेवाली गाड़ी तीस मील फी घण्टा की चाल

से विपरीत दिशा से आनेवाली गाडी से लड जाय, तो टक्कर की ताकत अस्सी मील फी घण्टे की होगी।

अब जब हमारी पृथ्वी टूटते तारों के समूह के मार्ग से गुजरती है, और हम उन टुकड़ों को देखते हैं, जो हमारी ओर आते हैं, तो जिस चाल के साथ वे हमारे वायु-मण्डल में घुसते हैं, वह उस चाल से कही अधिक होती है, जो उस अवस्था मे होती, यदि ये टूटते तारे उसी दिशा में जाते, जिधर हमारी पृथ्वी जा रही है, या अगर वे हमारे बगल से चलते। जितनी ही तेज चाल से पृथ्वी के वायु-मण्डल से टूटते तारे टकरायेंगे, उतनी ही अधिक गर्मी पैदा होगी। इसलिये विभिन्न तारे विभिन्न शक्ति के साथ टकराने के कारण विभिन्न रङ्ग की रोशनी फेकते हैं, जिनसे उनकी चाल का पता लगता है।

इन टूटते तारों के समूह की वर्षा क्या है, इनके इतने टुकडे क्यों होते हैं, और यह कभी-कभी बराबर क्यों गिरते रहते हैं? ये सभी टुकडे सम्भवत उन चीजों (ग्रहों, उप-ग्रहों और नक्षत्रों) के टुकडे हैं, जो बहुत पहले टूट चुकी हैं।

जिस प्रकार यह माना जाता है, कि किसी घूमते हुए तारे की टक्कर से सूर्य का एक टुकडा टूटा है, जिसका परिणाम यह हुआ कि ग्रह दूर खिंच गये, इसी प्रकार खगोलविदों का मत है, कि अन्य ग्रह भी टूट गये होंगे, और उनके टुकडों से मिलकर सूर्य के गिर्द निश्चित धुरी पर

घूमनेवाले पुच्छल तारे बन गये होंगे। फिर समय आने पर इन पुच्छल तारों में से कुछ टूट गये होंगे, और इस प्रकार जब हमारी पृथ्वी टूटते तारों के समूह के पथ से गुजरती है, तो वह वास्तव में किसी बुझे हुए पुच्छल तारे के मार्ग से जाती होती है। इस तथ्य से इस बात को पुष्टि और हो जाती है, कि खास मौकों पर जब किसी पुच्छल तारे के आने का समय होता है, तो पहले टूटते तारे नजर आजाते हैं।

ऐसा विश्वास किया जाता है, कि ये टुकडे सारे ग्रह-पथ में फैल जाते हैं, और इसीलिये प्रति वर्ष टूटते तारों की वर्षा-सी होती रहती है, और जब तक पृथ्वी टूटते तारों के मार्ग के निकट रहती है, तो लगातार एक सप्ताह तक यह वर्षा जारी रह सकती है। इसके अतिरिक्त कभी-कभी यह वृष्टि केवल एक दिन ही होकर रह जाती है। ऐसी अवस्था में यह समझा जाता है, कि टूटते तारे समस्त ग्रह-पथ में फैले न होकर किसी एक भाग में रहे होंगे, और उस मार्ग से पृथ्वी के गुजरते समय टूटते तारे दीखते हैं।

अधिकाश टूटते तारे अन्य समय की अपेक्षा प्रात काल ब्राह्म-मुहूर्त में टूटते हैं। इसका कारण हम यहाँ स्पष्ट करेंगे। एक तोप का गोला अगर मच्छरों या मकोडों के झुण्ड में से होकर गुजरेगा, तो वह उन्हें अपने साथ ले जायगा। इस दशा में गोले के उस भाग में ही मच्छर अधिक लगेंगे, जो समूह में पहले पड़ेगा।

पृथ्वी किस प्रकार टूटते तारों के मार्ग पर पहुँचती है, वह यहाँ दिखाया गया है—जहाँ हम पृथ्वी, सूर्य और टूटते तारों को देखते हैं। जिस समय पृथ्वी टूटते तारों के समूह से गुजर रही है, उस समय के प्रात काल छ बजे हैं, और यद्यपि टूटते तारे चारों ओर से पृथ्वी की ओर उड़ रहे हैं, पर जमीन का सामने का हिस्सा या सिरा उन टूटते तारों की अधिक-से-अधिक सख्या मे उसी प्रकार पडता है, जिस प्रकार तोप का गोला अधिकाश मच्छरों मे पडता है। जब बारह घण्टे बाद ये उस जगह पहुँच जाते हैं, जहाँ छ बजे शाम का समय दिखाया गया है, तो टूटते तारों की कम-से-कम सख्या दिखायी देगी, क्योंकि उस समय जो तारे पृथ्वी से तेज चल रहे होंगे, वही उसे पकड़ सकते हैं।

कुछ लोगों का ख़याल है, कि टूटते तारे कभी-कभी ही दिखायी देते हैं, पर बात यह नही है। प्रोफ़ेसर न्यूटन ने अनुमान लगाया, कि प्रति दिन हमारे वातावरण मे प्रवेश करनेवाले और दिखायी देनेवाले टूटते तारों की सख्या एक करोड से दो करोड तक है, और एक अन्य खगोल-विद् का कथन है कि आँखों से दीखनेवाले टूटते तारों के अतिरिक्त कम-से-कम १० करोड तारे और प्रति दिन हमारे वायु-मण्डल मे प्रवेश करते हैं, जो केवल दूरबीन के सहारे ही देखे जा सकते हैं।

टूटते तारों की धूल

ये टूटते तारे हमारी पृथ्वी का वजन बढाते हैं, इसमें सन्देह नहीं। साधारण जगहों से इनकी धूल देखने में नहीं आ सकती, किन्तु ग्रीनलैण्ड तथा उत्तर के बरफ से ढके हुये प्रदेशों के अन्य वैज्ञानिकों ने इस प्रकार की धूल प्रचुर मात्रा में एकत्रित की है, जो बरफ पिघलाने से निकलती है। उदाहरण के लिए स्विट्जरलैंड में डा० नार्डनरफोइल्ड ने सैकड़ों मन बरफ गलाकर, पानी को खौलाया। इसके फल-स्वरूप उन्हें ऑक्सीजन तथा अन्य पदार्थों के अतिरिक्त लोहे के बारीक कण मिले हैं, जिनके सम्बन्ध में विश्वास किया जाता है, कि वे टूटते तारों से आये हैं।

टूटते तारों के टुकडों का वजन प्राय कुछ ही औंस या उसका भाग हुआ करता है। उनकी संख्या इतनी अधिक है, कि प्रो० यङ्ग के कथनानुसार यदि हम दो करोड़ टूटते तारों के टुकडे प्रति दिन मान ले, और हरेक का वजन एक पौण्ड (आध सेर) का सोलहवाँ हिस्सा, अर्थात् आधी छटाँक मान लें, तो जमीन का वजन साल में कुल ४५ लाख मन बढता है। इसका मतलब यह हुआ कि यदि ८० करोड़ वर्ष तक लगातार ये तारे इसी हिसाब से टूटते रहें, तो सारी जमीन पर केवल एक इञ्च मोटी पर्त धूल की जम सकती है।

१२ नवम्बर, १८३३ ई० की घटना है। जब लियोनि-डस टूटा था, तो खगोलविद् दर्शकों ने हिसाब लगाया था

कि लगातार पॉच-छ घण्टे तक प्रति घण्टे २००,००० टुकडे दिखायी दिये थे। एक वैज्ञानिक का कथन है—"इस समय आकाश मे वे वैसे ही भर गये थे, जैसे तूफान के समय बरफ के टुकडों से आकाश आच्छादित हो जाता है।" एक बुढिया का कथन है कि उसने छतरी-जैसे बडे टुकडे भी देखे थे।

वास्तव मे कभी-कभी पृथ्वी के वायु-मण्डल में साधारण टुकडों से बडे टुकडे भी आ जाते हैं, और पृथ्वी पर आ-गिरने के पूर्व वह जल नही चुके होते हैं। एक-दो बार तो ऐसे बडे टुकडे पृथ्वी पर इस जोर से आ-गिरे हैं, कि उनसे बडा नुकसान हुआ है।

वर्ष में परिवर्तन

किन्तु जो टुकडे पृथ्वी पर धूल या गैस के रूप में गिरते हैं, उनका भी अद्भुत असर होता है, क्योंकि बहुत अल्प परिमाण में वे हमारे वर्ष की लम्बाई घटा रहे हैं। यह मात्रा इतनी कम है, कि हम उसका अनुभव नहीं कर सकते हैं, किन्तु गणित के द्वारा इसका हिसाब लगाया जा सकता है, कि साल-भर मे जितने सितारे टूटते हैं, उनके फल-स्वरूप दस लाख वर्ष मे सेकण्ड के हजारवे अंश की कमी हो जाती है। इसके कारण कई हैं, जिनमे से मुख्य यह है, कि पृथ्वी के आकार में ये कुछ वृद्धि करते हैं, जिससे पृथ्वी और सूर्य के बीच में अधिक आकर्षण

उत्पन्न हो जाता है, इसलिये ग्रह-पथ पर घूमने की कुछ चाल अधिक बढ़ जाती है।

ये टुकड़े जमीन पर अपने साथ कुछ परिमाण में गर्मी भी ले आते हैं, किन्तु साल-भर में जितने तारे टूटते हैं, उनके फल-स्वरूप इतनी गर्मी भी धरातल पर नहीं आती, जो सूर्य की एक सेकण्ड की दशमांश गर्मी से अधिक हो।

सूर्य भगवान्



हमारी पृथ्वी के लिये सब से आवश्यक और महत्व-पूर्ण ग्रह सूर्य है। यह कहने में कुछ भी अतिशयोक्ति नहीं है, कि सूर्य के अभाव में हमारी पृथ्वी का अस्तित्व दुरूह होजाता। भारत मे बहुत प्राचीन काल से सूर्य को देवता मानकर उसकी पूजा की जाती है, और अनेक प्रकार के व्रत और विधानों-द्वारा—अलोना भोजन-आदि करके—सूर्य की उपासना की जाती है। इस व्रत का खास उद्देश्य स्वास्थ्य-लाभ होता है। केवल हमारे ही देश मे नहीं, अब तो पाश्चात्य देश के वैज्ञानिकों ने भी यह आविष्कार करके कि सूर्य की किरणों में स्वास्थ्य-वर्द्धक तत्त्वों का समावेश प्रचुर मात्रा में है, सूर्य-स्नान (धूप मे तपना)-आदि को चिकित्सा-प्रणालियों मे सम्मिलित कर दिया है।

सूर्य की उपयोगिता

वास्तव मे यदि सूर्य न होता, तो हमारी पृथ्वी भी इस रूप में न होती, जैसीकि अब है, क्योंकि रोशनी और गर्मी के न होने पर, न तो कोई पौदा या वृक्ष ही उग सकता था, न वनस्पतियों के अभाव मे पशु-पक्षी और

फलतः मनुष्य ही जीवित रह सकते थे। इस प्रकार पृथ्वी का दारोमदार ही सूर्य पर है।

प्रचुर उष्णता

सूर्य मे कितनी गर्मी है, इसका अनुमान लगाना कठिन है, पर सर जेम्स जीन ने हमे इसे समझाने की कोशिश की है। उन्होंने काल्पनिक उदाहरण दिया है, कि एक बारीक आल्पीन के गोल सिरे मे यदि दस खरब घोडे की ताक़त के इजन से पैदा की हुई बिजली की गर्मी समा सके, तो उस आल्पीन के सिरे मे इतनी गर्मी हो सकेगी, कि वह हजार मील गर्मी फेककर किसी को मार दे।

जमीन पर सूर्य की जो गर्मी पडती है, सूर्य-मण्डल में उस गर्मी की अवस्था बिल्कुल भिन्न है। यह गर्मी गैस के रूप में होती है, और जितना ही सूर्य की तरफ जायँ, गैस की घनता बढती जायगी—यहाँ गर्मी इतनी अधिक है, कि कोई भी पदार्थ वहाँ जाकर कायम नहीं रह सकता, यहाँ तक कि उस पदार्थ के परमाणु तक नष्ट होजाते हैं।

सूर्य अपनी गर्मी अपने ही मे न रखकर सब दिशाओं मे फेकता है। इस फेकी हुई गर्मी का सिर्फ लगभग चार खरबवाँ अश पृथ्वी को मिलता है। हिसाब लगाकर मालूम किया गया है कि सौर-जगत मे जितनी उष्णता फेकी जाती है, उसका दस करोड़वाँ हिस्सा ग्रहों को मिलता है।

सूर्य भगवान्

—❀—

हमारी पृथ्वी के लिये सब से आवश्यक और महत्व-पूर्ण ग्रह सूर्य है। यह कहने में कुछ भी अतिशयोक्ति नहीं है, कि सूर्य के अभाव में हमारी पृथ्वी का अस्तित्व दुरूह होजाता। भारत मे बहुत प्राचीन काल से सूर्य को देवता मानकर उसकी पूजा की जाती है, और अनेक प्रकार के व्रत और विधानों-द्वारा—अलोना भोजन-आदि करके—सूर्य की उपासना की जाती है। इस व्रत का ख़ास उद्देश्य स्वास्थ्य-लाभ होता है। केवल हमारे ही देश में नहीं, अब तो पाश्चात्य देश के वैज्ञानिकों ने भी यह आविष्कार करके कि सूर्य की किरणों में स्वास्थ्य-वर्द्धक तत्त्वों का समावेश प्रचुर मात्रा में है, सूर्य-स्नान (धूप मे तपना)-आदि को चिकित्सा-प्रणालियों मे सम्मिलित कर दिया है।

सूर्य की उपयोगिता

वास्तव मे यदि सूर्य न होता, तो हमारी पृथ्वी भी इस रूप मे न होती, जैसीकि अब है, क्योंकि रोशनी और गर्मी के न होने पर, न तो कोई पौदा या वृक्ष ही उग सकता था, न वनस्पतियों के अभाव मे पशु-पक्षी और

फलत मनुष्य ही जीवित रह सकते थे। इस प्रकार पृथ्वी का दारोमदार ही सूर्य पर है।

प्रचुर उष्णता

सूर्य मे कितनी गर्मी है, इसका अनुमान लगाना कठिन है, पर सर जेम्स जीन ने हमे इसे समझाने की कोशिश की है। उन्होंने काल्पनिक उदाहरण दिया है, कि एक बारीक आल्पीन के गोल सिरे मे यदि दस खरब घोडे की ताकत के इजन से पैदा की हुई बिजली की गर्मी समा सके, तो उस आल्पीन के सिरे मे इतनी गर्मी हो सकेगी, कि वह हजार मील गर्मी फेककर किसी को मार दे।

जमीन पर सूर्य की जो गर्मी पडती है, सूर्य-मण्डल में उस गर्मी की अवस्था बिल्कुल भिन्न है। वह गर्मी गैस के रूप में होती है, और जितना ही सूर्य की तरफ़ जायँ, गैस की घनता बढती जायगी—वहाँ गर्मी इतनी अधिक है, कि कोई भी पदार्थ वहाँ जाकर कायम नहीं रह सकता, यहाँ तक कि उस पदार्थ के परमाणु तक नष्ट होजाते हैं।

सूर्य अपनी गर्मी अपने ही में न रखकर सब दिशाओं मे फेंकता है। इस फेकी हुई गर्मी का सिर्फ लगभग चार खरबवाँ अश पृथ्वी को मिलता है। हिसाब लगाकर मालूम किया गया है कि सौर-जगत में जितनी उष्णता फेकी जाती है, उसका दस करोड़वाँ हिस्सा ग्रहों को मिलता है।

यदि हम मान ले, कि सूर्य का धरातल चारों ओर से ४५ फ़ीट की गहराई तक ठण्ड से जम गया हो, तो इस विशाल और गहरी हिम-स्तर को सूर्य की गर्मी केवल एक मिनट मे गलाकर पानी कर सकती है। यदि पृथ्वी से सूर्य तक दो मील चौडाई का एक पुल बना दिया जाय, तो सूर्य की गर्मी उसे एक सेकण्ड-मात्र में पिघला देगी, और सात सेकण्ड में वह पानी भाप बनकर अदृश्य हो जायगा।

सूर्य में ऐसी प्रचण्ड गर्मी है, तो फिर हम उससे जलकर भस्म क्यों नही हो जाते? इसका कारण यह है, कि हम सूर्य से बहुत दूर, अर्थात् लगभग ९२,९००,०००मील के फासले पर हैं। साठ मील प्रति घण्टे के हिसाब से दौडनेवाली रेलगाडी सूर्य-लोक तक १७५ वर्ष में पहुँच सकती है, और डेढ पैसा फी मील के हिसाब से उसका किराया लगभग ९०,००,००० रु० होगा। कोई साइकिल-सवार, प्रति दिन सौ मील चलकर बिना रुके २,५५० वर्ष में वहाँ पहुँच सकता है। सूर्य की रोशनी हमारे पास ४९९ सेकण्ड में पहुँच पाती है।

विशाल सूर्य-मण्डल

जमीन के मुकाबले मे सूर्य अत्यन्त विशाल है। उसका व्यास ८६५,००० मील है, जो पृथ्वी से लगभग ११० गुना है। यदि पृथ्वी को सूर्य के अन्दर रख दिया जा सके, तो

चन्द्रमा उसके चारों ओर विना सूर्य के किनारों को छुए ही चक्कर लगा सकता है।

सूर्य का आकार इतना बडा है, कि उसमे १,३०००,००० जमीने समा सकती हैं। इतना विशाल होते हुए भी सूर्य का वजन और घनत्व जमीन से केवल ३३३,००० गुना है। इसका कारण यह है कि अत्यन्त गर्म होने के कारण सूर्य की औसत घनता पृथ्वी से बहुत कम है। जमीन का वजन पानी के इतने (पृथ्वी के बराबरवाले) ही बडे गोले की अपेक्षा ५$\frac{1}{5}$ गुना है, किन्तु सूर्य अपने आकार के बराबरवाले पानी के गोले की अपेक्षा वजन में डेढ-गुने से भी कम है। अर्थात् सूर्य का घनत्व पानी के घनत्व से १$\frac{1}{2}$ गुना कम है, जबकि पृथ्वी का घनत्व पानी के घनत्व से ५$\frac{1}{2}$ गुना है।

किन्तु घनत्व कम होते हुए भी आकार मे बहुत बडा होने के कारण सूर्य में आकर्षण-शक्ति बहुत ही शक्तिशाली है। यदि एक मनुष्य तत्काल यहाँ से सूर्य-लोक मे भेज दिया जाय, और वहाँ वह जीता रहे, तो आकर्षण-शक्ति की अधिकता के कारण उसका वजन लगभग ५५ मन हो जायगा, और उसके पाँव ऐसे भारी हो जायँगे, कि वह उन्हे उठाकर चलने मे असमर्थ हो जायगा।

सौ वर्ष पहले यह ठीक-ठीक जानना असम्भव होता कि सूर्य किस चीज से बना हुआ है। किन्तु एक

जनक यन्त्र के द्वारा यह पता लग गया है कि सूर्य भी उसी प्रकार के पदार्थों से बना है, जिनसे हमारी पृथ्वी। इस यन्त्र का नाम 'स्पेक्ट्रस्कोप' है।

जमीन के बनने में जिन चालीस तत्वों का सम्मिश्रण है, और जो धातविक पदार्थ हैं, वे सूर्य में भी पाये जाते हैं। ये पदार्थ चाँदी, लोहा, जस्त, सीसा, टीन, एल्यूमीनियम और कैलसियम हैं। हीलियम गैस भी सूर्य में मौजूद है, जो वातावरण को भरने के लिये अत्यन्त उपयोगी होती है, और जो हाइड्रोजन की तरह न जलनेवाली होती है।

सूर्य अपनी धुरी पर २५ दिन से अधिक समय में घूम जाता है, पर यह अद्भुत बात है कि उसका सारा धरातल एक ही गति से नहीं घूमता। भूमध्य-रेखा अपने निकटवर्ती स्थानों की अपेक्षा कम समय में घूमती है। इसका कारण यह है, कि सूर्य कोई ठोस चीज नहोकर गैस का बना हुआ है। हम जानते हैं कि सूर्य घूमता है, क्योंकि हम उसकी सतह पर बड़े-बड़े काले निशान चलते, गायब होते और फिर दूसरी ओर आ-जाते देखते हैं।

वैज्ञानिकों ने इस बात का वर्णन् करते हुए कि सूर्य दूरबीन से कैसा दीखता है, 'प्रकाश-मण्डल' और 'रङ्ग-मण्डल' का उल्लेख किया है। साथ ही 'मुकुट-भाग' का भी वर्णन् किया है।

प्रकाश-मण्डल सूर्य के उस प्रकट धरातल को कहते हैं, जो कैलसियम-आदि विशेष तत्वों की रोशनी से दीखता है। धरातल पर बहुत-से चमकीले बीजनुमा दाने दीखते हैं, जिनके बीच में एक धब्बा-सा होता है। उनकी छोटी आकृति के कारण प्राय वैज्ञानिक उन्हें 'धान' कहते हैं।

वास्तव मे प्रकाश-मण्डल वैज्ञानिकों के लिये अभी भी एक पहेली बना हुआ है। किन्तु साधारणतया यह विश्वास किया जाता है, कि प्रकाश-मण्डल बादलों का एक पर्त-सा ना। कम चमकीले वातावरण पर उसी प्रकार छाया रहता है, जैसे पृथ्वी के वायु-मण्डल पर पानी के बादल छाये रहते हैं। प्रो० यङ्ग का कहना है कि प्रकाश-मण्डल उसी प्रकार अत्यन्त चमकीला होता है, जैसे गैस का बर्नर ढक देने पर उसकी लो रोशनी फेकती है।

रङ्ग-मण्डल गैस का ऊपरी पर्त है, जो वायु-मण्डल की तरह सूर्य को घेरे हुए है। इसकी गहराई ५,००० मील या इससे भी गहरी है। इस रङ्ग-मण्डल को हम सूर्य का पूरा ग्रहण लगने पर, या बहुत बारीक स्पेक्ट्रस्कोप से देखा जा सकता है। यह रङ्ग-मण्डल प्रधानत हाइड्रोजन, हीलियम और कैलसियम गैसों से बना हुआ है।

जिस चीज को हमने मुकुट कहा है, वह मोती के सदृश एक सफ़ेद रङ्ग है, जिसने सूर्य को घेर रक्खा है। यह भी सूर्य का सर्व-ग्रहण लगने पर ही दिखायी देता है। यह

नदी के पेंदे में छेद

— ※ —

जब किसी नदी पर पुल बनाना होता है, तो वहाँ सख्त कंकड़ की नींव डालनी होती है। इसके लिये एक बहुत बड़ी लोहे की पोली गोलाकार कोठी नदी के पेंदे में धसायी जाती है। इस कोठी के अन्दर वजनदार कंकड़ भी भरे होते हैं, जिससे उसका वज़न और बढ़ जाता है, और उसके नीचे काम करने की जगह होती है, जहाँ बाहर से पिचकारी की नली-द्वारा हवा पहुँचायी जाती है। वहाँ से पानी तथा कीचड़-आदि बाहर निकाले जाते हैं। काम करनेवाले नदी का पेंदा खोदते हैं, और अन्दर हमेशा हवा भरी रहने और रोशनी जलने के कारण कठिनाई का अनुभव नहीं करते। जब वह कोठी नीचे धँसते-धँसते बैठ जाती है, तो उसमें कंकड़ भरकर नींव तैयार करली जाती है। उसके ऊपर फिर पुल के स्तम्भ ईंटों या पत्थरों से चुने जाते हैं।

डाकू केकड़ा

साधारणतः केकड़े समुद्र-तट पर अधिक पाये जाते हैं। जब समुद्र उतार पर होता है, तो उसके किनारे जाकर लोग पत्थरों और चट्टानों के अन्दर केकड़ों को देखते हैं,



डाकू केंकड़ा ।

किन्तु डाकू केकड़ा केवल वृक्ष से गिरे हुए नारियलों पर ही अपना अधिकार नहीं जमाता, बल्कि वह उसके लम्बे वृक्षों पर चढ़कर नारियल तोड़ता है, और जब नारियल जमीन पर गिर पड़ते हैं, तो यह नीचे उतरकर अपने शिकार पर प्रभुत्व जमाता है।

ये केकड़े बड़े ही ताक़तवर होते हैं, और कहा जाता है, कि वे अपने ताक़तवर पजों को धँसाकर आदमी का हाथ तोड़ सकते हैं, क्योंकि वह नारियल के सख्त आवरण को आसानी से तोड़ लेते हैं। एक बार ऐसे एक केकड़े को टीन के बक्स मे बन्द किया गया, तो उसने अपने पजे से उसमें छेद करके निकलने की बड़ी चेष्टा की थी। इसी से उसकी ताक़त का अनुमान किया जा सकता है।

नारियल को तोड़ने के लिये पहले तो वह उसके चारों ओर की जटा उखाड़ता है, फिर उसके कड़े आवरण पर बार-बार चोट करता है, यहाँ तक कि वह फूट जाता है।

डाकू केकड़ा गहरे बिलों मे रहता है, जो यह पेड़ की जड़ों मे खोदकर बना लेता है, और उस बिल में नारियल की जटा बिछा लेता है।

जल के स्थान में रहने की आदत केकड़े को बहुत दिनों मे पड़ी होगी, क्योंकि इसके लिये उसकी श्वास लेने की क्रिया में अन्तर पड़ने की आवश्यकता होती है। इस डाकू केकड़े की मादा समुद्र में ही अण्डे देती है, और जब उसके

बच्चे निकल आते हैं, तो कुछ समय तक यह समुद्र के किनारे रहती हैं। डाकू केकडा भी कभी-कभी समुद्र मे जाता है। उसके बच्चे ज्यों-ज्यो बढते हैं, वे खुश्की मे ही रहना पसन्द करते हैं। ये केकडे प्राय: पूर्वी और पश्चिमी हेमीस्फेयर्स, वेस्ट-इण्डीज और जमैका में भी देखे जाते हैं। ये समुद्र से दो-तीन मील की दूरी पर मिलते हैं, और दिन मे पत्थर के नीचे या और किसी सुरक्षित स्थान पर रहते हैं। इनके अण्डे देने का समय वसन्त-ऋतु मे आता है।

बिलों मे और पत्थरों के नीचे रहनेवाले खुश्की के केकडे जब समुद्र की ओर जाते हैं, तो सब-के-सब इकट्ठे होकर दल बाँधकर चलते हैं। इनके इस जुलूस की लम्बाई कभी-कभी तो एक मील से भी अधिक और चौडाई १५० फ़ीट तक होती है। आगे-आगे नर-केकडा होता है, और जुलूस बडी तेजी के साथ सीधी क़तार मे जाता है। यह जुलूस रास्ते मे कहीं ऊँचाई-निचाई पर मुड़ता नहीं— झाडियों, मकानों, गिरजों और पहाडियों पर चढता हुआ सीधा जाता है। समुद्र से वापस आकर वे अपने-अपने बिलों में घुस जाते हैं, और घुसकर शत्रु से रक्षा करने के लिये उनका मुँह बन्द कर देते हैं।

बर्फ़ की नदियाँ

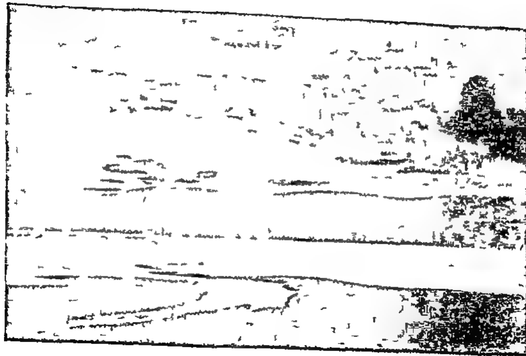
— ❀०❀ —

पहाड़ों पर लगातार जो बर्फ पड़ती रहती है, वह कहाँ जाती है ? हम जानते है कि जब मैदान में पानी बरसता है, तो उसका कुछ हिस्सा तो जमीन सोख लेती है, और बाक़ी जमीन पर नाले-नालियों से बहकर नदियों में पहुँचता है, और इस प्रकार पानी अन्त में समुद्र में जा पहुँचता है।

किन्तु पानी सरलतापूर्वक ऐसा इसलिये कर सकता है, कि वह तरल पदार्थ है किन्तु बर्फ ऐसा नहीं कर सकती, क्योंकि वह न तो जमीन में जज्ब ही हो सकती है, न पानी की तरह तेजी से बह ही सकती है। तौभी यह स्पष्ट है कि यह पहाड के ऊपरी हिस्सों में ही एकत्रित नहीं होती रह सकती, क्योंकि प्राय पहाड़ों पर बर्फीले तूफान आया करते हैं, और बर्फ बहुत-अधिक परिमाण में गिरती है। ऐसा होता, तो पर्वतों की ऊँचाई दिन-पर-दिन बढती ही जाती।

बर्फ़ या हिम

बर्फ पहाड़ों पर जितनी ही पडती है, उतना ही उसका नीचे का भाग दबता जाता है, यहाँ तक कि ऊपरी हिस्से के मुलायम होने पर भी नीचे का हिस्सा बहुत सख्त हो जाता है।



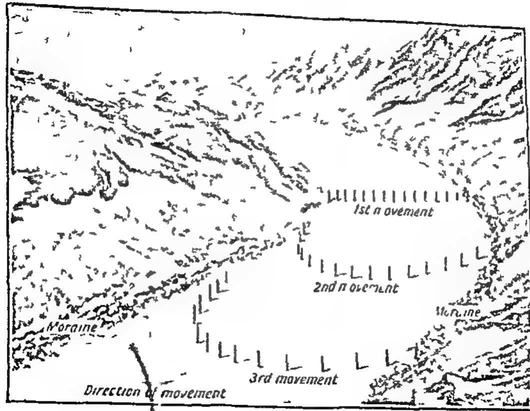
बर्फ की नदियाँ [illegible] १०२

रास्ते की बाधाओं को पार करके वह नीचे को लुढ़कती है, और बिना कोई तोड़-फोड़ किये आगे बढ़ती जाती है। किन्तु जब इसमें अधिक वेग और बल होता है, तो साधारणत. बर्फ टूटी-फूटी अवस्था में होजाती है, और उसमें गहरे छिद्र हो जाते है।

किन्तु प्रोफेसर टिण्डल ने इसका खण्डन किया है। उनका कथन है कि बर्फ पिघलने की अवस्था मे भी इतनी कठोर और निर्मल होती है कि वह घुटकर टेढ़े-मेढे बहने के अयोग्य होती है। डॉक्टर टिण्डल का कथन आजकल सही समझा जाता है।

जिस समय ग्लेशियर नीचे की ओर बहता है, तो बर्फ बराबर टूटती रहती है, और उसके टूटने से जगह-जगह ग्लेशियर मे गहरे छिद्र होजाते हैं। जब इन सूराखों पर सूर्य की रोशनी पड़ती है, तो बर्फ पिघलने की अवस्था में होजाती है, और इस प्रकार छेदों में पिघली बर्फ का पानी भर जाता है। फिर ज्यों-ज्यों ग्लेशियर चलता है, और टूटे-फूटे हिस्सों के किनारों पर ज़ोर पड़ता है, तो बर्फ फिर खाली छेदों मे भरकर समान बन जाती है, और ग्लेशियर की सतह समतल हो जाती है। इस प्रकार टूटनेवाली बर्फ ऐसी हो जाती है, मानो वह ढालने-योग्य चीज़ है, यद्यपि यह वास्तव में ऐसी नहीं होती।

अनुभवों से मालूम हुआ है, कि ग्लेशियर किनारों की



ग्लेशियर पृष्ठ १०४

अपेक्षा अधिक गति से चलता है—क्योंकि ग्लेशियर को आर-पार सीधी कतार में खूँटियाँ गाड़ देने से उसके बीच का हिस्सा आगे बढ़ जाता है, जिससे मालूम होता है कि मध्यवर्ती भाग अधिक चाल से सरकता है। ग्लेशियर के मध्य का भाग किनारों की अपेक्षा ऊँचा भी होता है।

जिस सुस्त चाल से ग्लेशियर अत्यन्त ठण्डे पहाड़ी प्रदेश से अपेक्षाकृत गर्म घाटियों की ओर फिसलता है, उसके कारण बर्फ़ की नदी यकायक पिघलकर पानी की नदी नहीं बन जाती क्योंकि ग्लेशियर के छोर पर प्रति दिन इतनी कम मात्रा में बर्फ़ पिघलती है, कि पानी या तो बड़ी नदी के रूप में परिवर्तित होने के पहले सरलतापूर्वक बह जाता है, या भाप बनकर उड़ जाता है। इस प्रकार के ग्लेशियरों की बात हिमालय और आल्प्स-जैसे महान् पर्वतों के लिये ही लागू होती है। अकेले आल्प्स में ही सौ ग्लेशियर हैं, जिनमें से केवल एक ही ऐसा है, जो दस मील लम्बा है। ऐसे ग्लेशियरों की संख्या चालीस से भी अधिक है, जो पाँच मील लम्बे हैं। अधिकांश ग्लेशियर एक मील से लम्बे नहीं हैं। कुछ तो सौ गज के ही लगभग चौड़े हैं, पर दस के क़रीब ऐसे हैं, जिनकी चौड़ाई एक मील है। आल्प्स के इन ग्लेशियरों की गहराई अधिक-से अधिक सौ गज के लगभग है।

उत्तरी ग्रीनलैण्ड में कभी कभी ग्लेशियर दो हजार

फीट ऊँची चोटी पर आ-गिरते हैं, किन्तु इस प्रकार के ग्लेशियर संख्या में बहुत कम होते हैं, और साधारणतः आल्प्स के-से ग्लेशियर अधिक होते हैं।

जब कभी किसी दुर्घटनावश कोई जीवधारी इन ग्लेशियरों के गहरे छेदों मे पड़ता है, तो उसकी लाश वर्षों बाद बर्फ में जमी मिलती हैं। एक बार मॉण्टब्लैंक पर कुछ पहाड़ी चढ़ रहे थे। संयोगवश से उनका मुखिया ग्लेशियर के गहरे छेद में गिर गया—४१ वर्ष बाद उस आदमी की लाश गिरी हुई जगह से १०,३८४ फीट नीचे उसके झोले-समेत मिली। इस प्रकार हिसाब लगाने पर मालूम हुआ कि उस ग्लेशियर की चाल प्रति वर्ष २५३$\frac{१}{४}$ फीट थी।

सन् १८४६ ई० की बात है। दस वर्ष पहले खोया हुआ एक झोला, जो ग्लेशियर के छेद मे गिर गया था, इस साल मिला था, और उसमे रक्खी हुई सब चीजें अच्छी हालत मे मौजूद थीं। जिस जगह वह झोला गिरा था, उससे ४३०० फीट नीचे प्राप्त वह हुआ था।

कुछ साल पहले की बात है, एक वैज्ञानिक ने पोट्रेंसिना के एक ग्लेशियर के छेद मे एक पीतल की मजबूत डिबिया में कुछ कागजात रखकर डाला था, जिसका अभिप्राय यह था कि ग्लेशियर के अन्तिम छोर पर उस डिबिया के मिलने पर ग्लेशियर की चाल का हिसाब लगाया जायेगा। यह हिसाब लगाकर देखा गया है, कि यह

डिबिया एक या डेढ़ शताब्दी बाद जाकर मिलेगी। उस डिबिया के अन्दर यह लिखकर रख दिया गया है कि जिस किसी को वह मिले, वह तुरन्त पोट्रेमिना के अधि-कारियों के पास भेज दे। उस ग्लेशियर की चाल $\frac{२}{५}$ इञ्च प्रति घण्टे शुमार की गयी है।

ढोल गर्जता क्यों है।

—० ०—

जिस समय ढोल पर लकडी या हाथ से चोट करते हैं, तो उससे गर्जने की-सी आवाज़ क्यों निकलती है? इसका कारण यह है, कि जो चमडा ढोल पर मढा हुआ होता है, उस पर चोट करने से वह प्रकम्पित होता है, और उससे ढोल के अन्दर भरी हुई हवा को प्रकम्पित करता है। ये प्रकम्पन ढोल के दूसरे तरफवाले चमडे पर जा लगते हैं, और वह भी प्रकम्पित हो उठता है, और हवा में अपनी लहर भर देता है—इस प्रकार लगातार ढोल पीटने पर ऐसी तरगे हवा में उठती रहती हैं, जो बिजली के गर्जने की तरह आवाज़ देती हैं।

किन्तु कड़कड़ाहट की जो आवाज़ होती है, वह उन रस्सियों के कारण होती है, जो खींचकर नीचे की ओर बँधी होती हैं। जब ऊपरी हिस्सा ठोंककर बजाया जाता है, तो नीचे का भाग भी तरङ्गित हो उठता है, और वह बार-बार रस्सियों से टकराता है। इस प्रकार कड़कड़ाहट की आवाज़ पैदा होती है। गर्जने की-सी आवाज़ निकालने के लिये दोनों ओर से लगातार चोट देने की आवश्यकता होती है।

ढोल का प्रचार इस समय सारे ससार मे होगया है। पहले यह एशियाई देशों में ही था, पर बाद मे यूरोप की युद्ध-प्रिय जातियों ने यहाँ आकर इसका उपयोग सीखा, और अब यह सारे ससार में प्रचलित है।

ढोल अनेक प्रकार के होते हैं—हिन्दुस्तान मे ढोल बहुधा साज के साथ बजता है, और गाने के समय भी हाथ से बजाया जाता है। कहीं-कहीं इश्तहार-बाजी और घोषणा के काम में लकड़ी से पीटकर ढोल बजाये जाते हैं। पर पाश्चात्य देशों में इसको और ही रूप दे दिया गया है, और प्राय बैण्ड के साथ ढोल लकडी से पीटकर बजाये जाते हैं।

कुछ मनोरञ्जक प्रयोग

— ❀ —

बहुत-से ऐसे प्रयोग हैं, जो बिना किसी विशेष परिश्रम के घर पर ही किये जा सकते हैं, और उनके लिये खास औजारों की भी जरूरत नहीं होती—केवल एक टेस्ट-ट्यूब और कुछ शीशे के मर्तबान, गिलास और रकाबी-आदि से काम चल सकता है, जो हर घरों में मिलते हैं।

पहले हम ऐसे प्रयोग को लेते हैं, जो सुनने में बड़ा आश्चर्यजनक प्रतीत होता है। एक ऐसे टेस्ट-ट्यूब में खौलता पानी डालें, जिसकी पेंदी मे बर्फ जमी हुई अवस्था मे हो। टेस्ट-ट्यूब को हम ठण्डे पानी से लगभग पूरा भर दे—केवल थोड़ा-सा खाली रक्खे—फिर बर्फ का एक छोटा-सा टुकड़ा लोहे की कील या सीसे के टुकड़े से बाँधकर डुबो दे।

प्रयोग को सन्तोषजनक रीति से करने के लिये यह आवश्यक है, कि बर्फ टेस्ट-ट्यूब की पेंदी में ही रहे। अब टेस्ट-ट्यूब को चित्र मे दिये हुए ढङ्ग के होल्डर या तार से, जो टेस्ट-ट्यूब के गिर्द बँधा हो, पकड़कर इस तरह उठायें कि टेस्ट-ट्यूब का ऊपरी हिस्सा मिथिलेटेड स्पिरिट के जलते हुए लैम्प की लौ पर आवे।

कुछ देर बाद टेस्ट-ट्यूब के ऊपरी भाग का पानी खौलने लगेगा, पर पेंदी में जमी हुई बर्फ नहीं पिघलगी। इसका कारण क्या है? कारण यह है कि पानी गर्मी का ऐसा बुरा सञ्चालक है, कि खौलते हुए पानी की गर्मी बहुत देर तक पेंदी के पानी तक नहीं जाती, इसलिये बर्फ जमी-की-जमी ही रहती है।

अब हम मामूली सोख्ता (ब्लॉटिंग पेपर) का टुकड़ा लें, और दूसरे पानी छानने का काम लेकर दो एक सादे प्रयोग करके देखें, कि छानना किस प्रकार ठीक-ठीक हो सकता है। ब्लॉटिंग पेपर के एक चौकोर टुकड़े को दुपर्ता मोड़कर उसका नुकीला हिस्सा नीचे करके टीन या एल्यूमिनियम के चोंगे में इस प्रकार लगा दें, कि जो तरल पदार्थ चोंगे में डाला जाय, वह ब्लॉटिंग पेपर से होकर ही नीचे जाय।

कुछ बारीक रेत पानी के गिलास में डालकर उसे अच्छी तरह हिला लेने के बाद ब्लॉटिंग पेपरवाले छनने में डालें। पानी छनकर नीचे चला जायगा, पर रेत ब्लॉटिंग-पेपर में रह जायगा। इसी प्रकार काजल या कोयले की बारीक धूल भी पानी में मिलाकर छान लें—पानी नीचे गिर जायगा, लेकिन धूल ब्लॉटिंग पेपर में रह जायगी। इन प्रयोगों से मालूम हो जायगा कि इस छानने का परिणाम क्या होता है। इस प्रकार छानने से ठोस पदार्थ तरल से अलग हो जाता है।

अब हम यह देखेंगे कि छानने से क्या काम नहीं होता। पानी मे कुछ चीनी या सोडा मिलालें, और फिर उसे चोंगे मे पूर्ववत् डालें। पानी नीचे चला जायगा, पर ब्लॉटिंग मे चीनी या सोडा नही रुकेगा; क्योंकि ये दोनों पदार्थ पानी में घुल जाते हैं। इस घुले हुए तरल का रूप छानने से बदल नही सकता। इसलिये पानी मे घुले हुए ये पदार्थ उसके साथ ही छनने के नीचे चले जाते हैं। इसी प्रकार नीले रग को पानी मे मिलाकर ब्लॉटिंग पेपर मे छाने, तो वह भी ब्लाटिंग मे न रुककर नीचे चला जायगा।

यहाँ हम दो मामूली प्रयोग देते हैं, जो मामूली बोतलों या शीशे के कूँजों से किये जा सकते हैं। जब हम बोतल को बर्फ के अत्यन्त ठण्डे पानी से भरकर रख देते हैं, तो हम फौरन् देखेंगे, कि बोतल पर छोटे-छोटे जल-कण जमा होने लगेंगे। इसका कारण यह है, कि हवा में मिली हुई भाप ठण्डे गिलास की ठण्डक से नमी के रूप में परिणत होजाती है। इसी सिद्धान्त के अनुसार बागों और खेतों-आदि के पेड़ों, और पौदों पर ओस-कण भी जमा होजाते हैं।

अगर हम बोतल को ठण्डे पानी से भरने की बजाय, उसमें जमी बर्फ और नमक का मिश्रण भर दे, तो बोतल पर जो चीज जमा होगी, वह पानी न होकर जमे हुए पाले की शक्ल में होगी।

यहाँ पर एक ऐसा प्रयोग बतलाया जाता है, जिससे

यह सिद्ध होगा, कि जग या मोर्चा हवा में से ऑक्सीजन (प्राणप्रद वायु) लेता है। कुछ लोहे के चूरे लेकर मलमल के टुकड़े मे बाँधो, और उसे भिगोकर शीशे के टुकड़े या नली में बाँध दो। एक बड़े कटोरे मे पानी भरकर एक शीशे का मर्तबान लो, और पोटली बँधी हुई नली को एक शीशे के मर्तबान पर इस प्रकार रक्खो, कि उसका सिरा मर्तबान की पेंदी की ओर हो—और मर्तबान औंधा कर, कटोरे में इस प्रकार रक्खो, कि कटोरे का पानी मर्तबान के कुछ हिस्से में चढ़ता रहे।

एक सप्ताह बाद पानी मर्तबान मे और ऊँचा उठ आयेगा, क्योंकि मर्तबान में भरी हुई हवा लोहे में मिश्रित होकर मोर्चा बनायेगी, और हवा के रिक्त स्थान की पूर्ति के लिये पानी ऊपर चढ़ेगा। यदि हम मर्तबान में एक जलती हुई मोमबत्ती लेजायँ, तो वह बुझ जायगी, क्योंकि उसमे उसे जलाने के लिये काफी ऑक्सीजन नहीं है।

एक और प्रयोग हम इसी प्रकार सरलतापूर्वक कर सकते हैं। कपूर का एक टुकड़ा किसी टेस्ट-ट्यूब में डालकर उसे जलती आँच को हल्की लौ पर गर्म करे। धीरे-धीरे कपूर गायब होजायगा, क्योंकि इस प्रकार वह भाप के रूप मे परिणत होजायगा। पर यह फिर ट्यूब के सिरे पर गाढ़ा होकर जमता दिखाई देगा। यही प्रयोग नौसादर से भी हो सकता है।

बिजली के चुम्बक का महत्व



चुम्बक-शक्ति या आकर्षण करने की ताक़त का आविष्कार क्रियात्मक कार्यों के लिये अभी हाल में ही हुआ है। इसमें सन्देह नहीं, कि चुम्बक या मक़नातीस की शक्ति का पता प्राचीन काल मे ही लोगों को लग चुका था। चीन में चुम्बक की सुई खुश्की के सफ़र में बहुत पुराने ज़माने से काम में लायी जाती रही है। यूरोप-निवासियों ने उसके बहुत बाद कम्पास का इस्तेमाल सीखा।

समुद्र में जहाज़ चलानेवालों के लिये तो कम्पास बड़ी ही बहुमूल्य चीज़ है, क्योंकि वह उनके पथ-प्रदर्शन का काम करता है। किन्तु साधारण आदमियों के लिये उनका कोई विशेष मूल्य नहीं है। कभी-कभी लोहे के छड़ों, नालों, चाक़ुओं, सुइयों तथा अन्य चीज़ों में आकर्षण-शक्ति डाली जाती है, किन्तु उसकी क्रिया बिजली के द्वारा होती है, चुम्बक पत्थर के द्वारा नहीं।

जिस चीज़ मे यह चुम्बक-शक्ति डालनी होती है, उसके चारों ओर तार लपेट देते हैं, और फिर उस तार में बिजली का करेण्ट छोड़ते हैं—इससे अन्दर बँधी हुई धातु में चुम्बक का गुण आ जाता है। अगर यह धातु

फौलाद होती है, तो करेण्ट काट देने पर भी यह चुम्बक बना रहता है, पर अगर नाल या छड़ मुलायम लोहे का होता है, तो ज्यों-ही करेण्ट बन्द हो जाता है, लोहे में से भी चुम्बक-शक्ति जाती रहती है।

जो व्यक्ति चुम्बक और बिजली के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञान रखता है, वह इसके महत्त्व को अवश्य जानेगा। हमारी सभी आधुनिक बिजली की मशीनें इसी सिद्धान्त पर निर्भर करती हैं—यहाँ तक कि हमारी घरेलू बस्तियों में घण्टी-आदि में इसका उपयोग होता है।

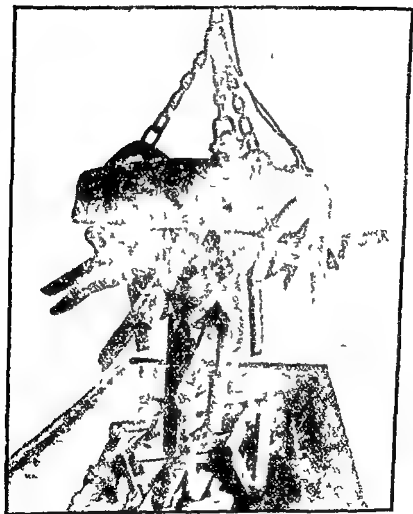
जर्मनी के एक प्रसिद्ध विद्वान् हैंस क्रिश्चियन आर्सटेड ने सन् १८१९ ई० में बिजली की आकर्षण-शक्ति का पता लगाया था। यह महाशय कोपेनहेगन-विश्वविद्यालय के आचार्य थे। उन्होंने यह देखकर कि चुम्बक की सुई पर बिजली के करेण्ट की क्रिया होती है, इस बात का पता लगाया था।

बहुत समय तक वैज्ञानिकों को यह सन्देह रहा कि चुम्बक और बिजली में कुछ पारस्परिक सम्बन्ध है, किन्तु किसी ने इसे तथ्य के रूप में नहीं सिद्ध किया। इस आविष्कार के साथ बिजली की आकर्षण-शक्ति के विज्ञान का जन्म हुआ, और एक के बाद दूसरे वैज्ञानिकों ने इस ज्ञान में कुछ-न-कुछ वृद्धि की, जिसके फल-स्वरूप आज हम इसका विकसित रूप देखते हैं।

जाने पर जिन चीजों को तोड़ना होता है, उन्हे गोले के नीचे रख देते और फिर विजली का करेण्ट बन्द कर देते हैं। इससे लोहे का वह विशाल गोला पुराने लोहे, या यन्त्र अथवा निकम्मे इञ्जिन-आदि जिस चीज को तोडना होता है, उस पर गिरकर उसको चूर-चूर कर देता है। इतनी आसानी से और किसी भी तरह यह चीजे नहीं तोड़ीं जा सकतीं। फिर ज्यों-ही विजली का करेण्ट खोल दिया जाता है, लोहे का वह विशाल गोला छड से चिमट जाता है, और दूसरी वार गिरने के लिये तैयार हो जाता है। इन-में से कुछ गोले तो डेढ सौ मन से भी अधिक भारी होते हैं—इससे वह जिस जोर से नीचे गिरते होंगे, इसका अनुमान सहज मे ही लगाया जा सकता है।

लोहा, चाहे छड के रूप में हो,—या टुकड़ों और चूरों के रूप मे, अथवा वह किसी यन्त्र, गाड़ी के पहिये या छोटे पुर्जों के रूप मे हो, उसके लादने और उतारने में बिजली के चुम्बक के अतिरिक्त और कोई प्रणाली इतनी उपयोगी नहीं है। विजली का चुम्बक धूल में पड़े हुए लोहे के चूरों को भी अपने आप बीनकर खींच लेता है, जिससे समय और शक्ति की बहुत बचत होती है।

पाँच-छ फीट व्यास का विजली का चुम्बक यंत्र, जिसका वजन लगभग ८५ मन होगा, ८०० मन से भी अधिक वजन एक वक्त में उठा सकता है। और सब मे



चुम्बक शक्ति का चमत्कार

बड़ी सुविधा तो इससे यह होती है कि जिस चीज को उठाना होता है, उसे किसी चीज से बाँधने-छानने की जरूरत नहीं पड़ती, न बीच में उसके गिरने का ही डर रहता है।

इस प्रकार के विशाल बिजली के चुम्बक-यन्त्र को इस प्रकार बन्द करके, जिससे उसके अन्दर पानी न जा सके, पानी के अन्दर डुबोकर भी काम मे ला सकते हैं।

किन्तु इन बिजली के चुम्बक-यन्त्रों का सब से अधिक उपयोग लोहा गलानेवाली भट्टियोंवाले कारखानों में होता है, क्योंकि वह न-केवल लोहे के बड़े-से-बड़े टुकड़ों को तोड़ देते हैं, बल्कि वह उन गर्म लोहे की चीजों को भी उठाकर यथा-स्थान रख सकते हैं।

इस प्रकार के एक विशाल चुम्बक-यन्त्र का चित्र यहाँ दिया गया है, जो हजारों मन कच्चे लोहे के टुकड़ों के ढेर के ऊपर लगा है। यह इस ढेर को थोड़ी ही देर में उठाकर यथा-स्थान रख सकता है।

इसी प्रकार बिजली का चुम्बक छोटे कामों में भी आता है। आँख में पड़ी हुई लोहे की किरकिरी को यह फ़ौरन् निकाल-बाहर करता है।

सोते का पानी कहाँ से आता है।



पहाड़ों की सैर करनेवालों ने देखा होगा, कि सोतों का पानी न केवल साधारण पानी से अधिक ठण्डा होता है, वरन् उसमें स्वाद भी अधिक होता है। इसका क्या कारण है?

इस प्रश्न का उत्तर देने के पहले हमें यह जान लेना चाहिये, कि सोते बनते किस प्रकार हैं।

समुद्र का पानी सूर्य की गर्मी से भाप बनकर उड़ता है। भाप एक अदृश्य पदार्थ की तरह हवा में उड़कर जल्दी या देर में ठण्डी हवा से जा मिलती है, जहाँ वह ठण्ड के कारण छोटे-छोटे जल-कण के रूप में परिवर्तित हो जाती है, और जब यह जल-कण इतने भारी हो जाते हैं, कि हवा में नहीं रुक सकते—तब यह बड़े जल-बिन्दु के रूप में पृथ्वी पर बरस पड़ते हैं।

इस बारिश का पानी कहाँ जाता है? उसमें से कुछ तो धरातल और पहाड़ों की ढाल पर बहकर नदियों में पहुँचता है, और इस प्रकार वह समुद्र में जा पहुँचता है। किन्तु कुछ बारिश जमीन भी सोख लेती है, और अन्त मे यह पानी जमीन के ऐसे गीले पर्त पर पहुँचता है, जो जल के

लिये अभेद्य होता है। यह पानी उस पर्त में तब तक रहता है, जब तक कि यह गीली मिट्टी की पर्त ढालू नहीं हो जाती। पर्त के ढलावाँ हो जाने पर वहाँ का जमा हुआ पानी ज़मीन के अन्दर-ही-अन्दर नदी की तरह बह चलता है।

संसार के सभी भागों में इस प्रकार के गुप्त जल-श्रोत पाये जाते हैं, और जब कुआँ खोदने पर जल निकलता है, तो उसका मतलब है, कुआँ पृथ्वी के अन्दर उस नदी, झील या श्रोत तक पहुँच जाता है, जिसका वर्णन् ऊपर किया गया है।

धीरे-धीरे यह गुप्त जल-धारा पृथ्वी के अन्दर-ही-अन्दर किसी पहाड़ी के किनारे जा पहुँचती है, जहाँ समय आने पर मौसिम या किसी और कारण से प्रेरित होकर वह पहाड़ी से फूट-निकलती है, और फिर वही जल-धारा सोते के नाम से पुकारी जाती है, और लोग उससे पीने के लिये जल प्राप्त करने लगते हैं।

सोते का पानी ठण्डा इसलिये होता है, कि वह बहुत समय तक ज़मीन के अन्दर रह चुका होता है। वहाँ न तो सूर्य की गर्मी उस पर प्रभाव डाल सकती थी, न वायु-मण्डल का ही असर होता है। इसका स्वाद इसलिये सुन्दर होता है, कि वह पानी सख्त होता है, क्योंकि उसमें खनिज-पदार्थ मिले होते हैं। सख्त पानी का स्वाद, हल्के

या नर्म जल से सदा बढ़िया होता है। चुआया हुआ पानी स्वाद में फीका होता है, क्योंकि उसमें से खनिज-पदार्थ निकल जाता है। इसीलिये हम इस जल को प्राय. पीना न पसन्द करेंगे, और सोते के पानी को हमेशा पीना चाहेंगे।

सोते की गहराई पृथ्वी के उन छिद्रों पर निर्भर है जिसके द्वारा बारिश का पानी रिसकर अन्दर के स्तर में पहुँचता रहता है। अगर अभेद्य स्तर बहुत नीचे होता है तो सोता गहरा होता है। ये अन्दर के जल-श्रोत पत्थरों और कोयले की खानों में बड़ी बाधा डालते हैं। बहुत-सी बडी-बड़ी खानों का काम इन जल-श्रोतों के कारण बन्द करना पड़ा। खानों के अन्दर पम्प लगाकर नल-द्वारा उसमें से पानी निकालने की व्यवस्था भी होती है, पर जहाँ पानी अधिक बढ जाता है, वहाँ इससे भी काम नहीं चलता, और काम बन्द करना पड़ता है।

ग्रामोफ़ोन का रेकार्ड कैसे बनाया जाता है ?

—०○—

हरेक आदमी जानना चाहता है, कि ग्रामोफ़ोन-रेकॉर्ड किस तरह बनाये जाते हैं। एक ओर कोने में एक गायक बैठा हुआ गाना गाता है। उसका स्वर हवा में तरङ्गित होता है, जिसमें से होकर बिजली का करेण्ट गुजरता है, और बिजली का प्रवाह घटता-बढ़ता है। यह करेण्ट एक ध्वनि-विस्तारक यन्त्र मे जाता है, जिसका सम्बन्ध मुख्य करेण्ट से होता है। यह करेण्ट (प्रवाह) एलीमीनेटर से होकर गुजरता है, जो स्वर को स्वच्छ करने का काम करता है। इस ध्वनि-विस्तारक यन्त्र (एम्लीफायर) से करेण्ट तारों-द्वारा एक मैगनेट (चुम्बक) के छोरों से लगा होता है, जिस पर स्टाइलस छड़ होता है। ये सब चीजें रेकॉर्ड बनानेवाली मशीन में शामिल हैं। माइक्रोफोन से जो अनेक प्रकार के करेण्ट आते हैं, वह एक तार को इधर-उधर हिलाते रहते हैं। इस तार से मिली हुई एक स्टाइलस या काटनेवाली सुई होती है। ज्यों-ज्यों तार घूमता है, यह सुई घूमते हुए मोम के तवे में बारीक-

बृहस्पति के कटिबन्धों का रङ्ग और उसकी चौड़ाई विभिन्न समय पर बदलती रहती है, और जो चिन्ह उन पर दीखते हैं, वे कभी-कभी सयुक्त रूप से और कभी एक-दूसरे से भिन्न रूप में ३०० से ४०० मील प्रति घण्टे की गति से चलते दिखायी देते हैं। बृहस्पति के बादलों में यह गति इसलिये होती प्रतीत होती है, कि वहाँ वायु-प्रवाह तीव्रता से होता है। ऐसी अवस्था में बृहस्पति-लोक का धीमा से-धीमा वायु-प्रवाह हमारी पृथ्वी के उस प्रबलतम तूफ़ान के बराबर है, जो १०० मील प्रति-घण्टे की चाल से चलता है, और जिसके कारण घर-बार, पेड-पल्लव और आदमी तक उड जाते हैं।

बृहस्पति के अँधेरे भाग की चौड़ाई समय-समय पर घटती-बढती रहती है। कभी-कभी तो उसकी चौड़ाई १०,००० मील तक पहुँच जाती है। कभी-कभी इन पर प्रकाशित चिह्न दिखायी देते हैं, जो क्रमश लाल होकर फिर ग़ायब हो जाते हैं।

भेदपूर्ण लाल चिह्न

सब से अधिक आश्चर्यजनक बात जो बृहस्पति-लोक में देखने में आती है, वह है—एक बडा अण्डाकार निशान, जिसका पता पहले-पहल सन् १८५७ ई० [illegible] गया था। उस समय यह एक अत्यन्त आलोक[illegible]

इसका रग आरम्भ में हल्का-गुलाबी-सा



उल्का पात

धीरे समय के साथ यह चमकीले लाल रँग में परिणत होगया।

वास्तव मे सभी ग्रहों में देखे जानेवाले निशानों में से यह निशान सब से बड़ा था। जब यह सब से अधिक बढ़ता था, तो उसकी लम्बाई ३०,००० मील, और चौड़ाई ७,००० मील होती थी। खगोल-विशारदों ने इसका अध्ययन बड़ी दिलचस्पी के साथ किया, और इस पर आश्चर्य करते रहे, कि यह क्या चीज़ हो सकती है। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, यह लाल निशान भी क्रमश परिवर्तित होता गया। धीरे-धीरे यह हल्का पड़ने लगा, और अन्त मे १९१९ ई० में यह फिर दिखायी दिया, और सब खगोल-विदों का ध्यान इधर आकर्पित होगया।

सभी तरह के सिद्धान्तों से यह पता लगाया जाने लगा, कि आखिर यह निशान है क्या चीज। कुछ का यह खयाल था, कि यह उन बादलों के बीच का रिक्त स्थान होगा, जिससे बृहस्पति के धरातल का भाग देखने में आता होगा। किन्तु यह बात कठिन मालूम होती है, कि बादलों के बीच में इतना विशाल स्थान खाली होगा, और वह लगभग एक ही स्थान पर इतने वर्षों तक टिका रहेगा।

दूसरा खयाल यह है, कि यह एक प्रकार का बवण्डर है, जो बादलवाले खण्ड में उठता है। किन्तु इसके विरुद्ध भी बहुत-सी बातें हैं, क्योंकि इस लाल निशान में

कभी-कभी नोकें भी देखने में आयी हैं, जो बवण्डर में नहीं हो सकती थीं।

बृहस्पति का लम्बा साल

अभी तक इस निशान के सम्बन्ध में सन्तोषजनक कारण नहीं ज्ञात हो सके हैं; न यही मालूम हो सका है, कि यह बार-बार क्यों दिखाई देता है।

पृथ्वी की तरह बृहस्पति न-केवल अपनी धुरी पर घूमता है, बल्कि यह हमारी पृथ्वी की तरह सूर्य के गिर्द भी चक्कर लगाता है। किन्तु पूरा चक्कर लगाने में हमारे साल के हिसाब से उसे बारह वर्ष लग जाते हैं—इसका मतलब यह हुआ, कि बृहस्पति का साल हमारे ग्यारह साल और ३१५ दिन के बराबर होता है।

बृहस्पति सूर्य से लगभग ४८ करोड ३० लाख मील की दूरी पर है, किन्तु चूँकि उसका पथ पृथ्वी के भ्रमण-पथ की तरह अण्डाकार है, इसलिये वह कभी सूर्य के निकट पहुँच जाता है, तो कभी दूर पहुँच जाता है। उसके और सूर्य के अधिकाधिक और न्यूनातिन्यून फ़ासले का अन्तर ४ करोड़ २० लाख मील है।

यदि हम बृहस्पति-लोक में खड़े होकर सूर्य को देख पाते, तो वह एक छोटा-सा गोला दिखाई देता, इतना छोटा कि जितना बड़ा वह हमारी पृथ्वी से दीखता है, उसका पचमांश दीखता। इसका कारण यह है, कि सूर्य

से बृहस्पति का फासला पृथ्वी की अपेक्षा कहीं अधिक है, और उस पर सूर्य से पृथ्वी की अपेक्षा $\frac{१}{२७}$ गर्मी और रोशनी पहुँच पाती है।

चमकीला ग्रह

इतनी दूरी पर होते हुए भी बृहस्पति (तारे) की ओर जब हम आकाश में देखते हैं, तो वह बहुत चमकीला दिखायी देता है। आकाश में जितने भी तारे दीखते हैं, उनमें शुक्र के बाद बृहस्पति ही सब से अधिक चमकदार है। इसकी चमक उस चमक से भी अधिक होती है, जो मङ्गल के पृथ्वी के निकट आ जाने पर उसकी होती है। उसकी इस चमक का कारण यह है कि वह बहुत बड़ा है। फासला अधिक होने पर जो कमी होती है, वह उसके आकार बड़े होने से पूरी हो जाती है।

वास्तव में बृहस्पति है किस प्रकार का ग्रह ? अभी थोड़े ही समय पहले तक यह विश्वास किया जाता था कि इस ग्रह मे गर्मी बहुत है, सूर्य की तरह यह स्वत तप्त है, और उसके घनत्व का माद्दा बढ़ता जा रहा है। उस समय बृहस्पति को 'अर्द्ध-सूर्य' के नाम से लिखा गया था—और वह अपनी ही गर्मी से प्रकाशित समझा जाता था।

एक प्रसिद्ध खगोल-विद् ने लिखा था—"बृहस्पति की घनता और उसके गुरुत्त्वाकर्षण से यह सहज में ही

अनुमान लगाया जा सकता है, कि उसका अन्तर्भाग अत्यन्त उष्ण है। किसी खगोल-विद् ने इसके धरातल को बहुत गर्म माना है। किन्तु यह बात सच नहीं हो सकती, क्योंकि उपग्रहों की जो छाया इस ग्रह पर पड़ती है, वह पूर्णत काली होती है, और जब कोई उपग्रह बृहस्पति की छाया में होता है, तो वह अदृश्य होता है।

बृहस्पति में ज्वालामुखी पर्वत की-सी प्रज्वलित क्रिया स्पष्ट देखने में नहीं आयी, किन्तु इस ग्रह की दूरी इतनी अधिक है, कि कई-सौ मील का विशाल ज्वालामुखी होने की दशा में भी उसकी क्रिया का पता नहीं लग सकता था।

इस अवस्था में यदि हम यह समझें कि बृहस्पति विकास की अवस्था मे है, तो यह बात सत्य से बहुत दूर नहीं होगी। साथ ही यह बात भी झूठ नहीं होगी, कि इसके अन्दर गैस का परिमाण बहुत है, जो उसके धरातल पर घूमता रहता है, और इसके अन्दर की गर्मी अब भी भड़क उठती है।

किन्तु हाल ही में खगोल-विद् इससे बिल्कुल भिन्न परिणाम पर पहुँचे हैं। सर जेम्स जीन ने कहा है कि—"बृहस्पति इतना शीतल है, कि जिसको कल्पना भी नहीं की जा सकती। इससे जो गर्मी निकलती है, उससे प्रतीत होता है, कि उसका शीतमान फॉरेनहाइट की माप से शून्य से २७० डिग्री (अंश) नीचे होना चाहिए। यह इतना शीतल

है, कि यहाँ न-केवल पानी, वरन् मामूली गैसें भी, जो हमारे वायु-मण्डल मे पायी जाती हैं, जम जायँगी। फिरभी वह ग्रह नितान्त क्रियाहीन नहीं है। उसके वायु-मण्डल के निश्चित चिन्ह कुछ समय ठहरकर फिर बदलते रहते हैं। यह परिवर्तन की क्रिया लगभग उसी प्रकार होती है, जैसी हमारे वायु-मण्डल मे बादल होने और नष्ट हो जाने की क्रिया होती रहती है। बृहस्पति-लोक मे जो बादल होंगे, वे सम्भवत कार्बन-डॉय-ऑक्साइड या किसी अन्य गैस के बादल होंगे, जो बहुत थोडे शीतोष्ण के मान से घनत्व बदलते रहते हैं।"

वैज्ञानिकों ने उस घनत्व-परिमाण की गर्मी का भी हिसाब लगा लिया है, जो बृहस्पति से हमारी पृथ्वी को प्राप्त होती थी, और अब पहली बात के विरुद्ध यह निश्चय हुआ है, कि बृहस्पति मे जो तापमान है, वह सूर्य से ही प्राप्त किया गया समझना चाहिए। इस प्रकार एक-दो वर्ष में हमे इस सौर-परिवार के विशाल ग्रह के सम्बन्ध में अपने विचार पूर्णत बदलने पडे।

बृहस्पति के उपग्रहों की सख्या अभी तक आठ समझी गई है, जिनमें से चार तो इतने बडे हैं, कि हम मामूली दूरबीन से भी उन्हें देख सकते हैं, किन्तु दूरबीन से देखते समय दूरबीन को एक ही स्थान पर बिल्कुल स्थिर रखने की जरूरत होती है।

बृहस्पति के उपग्रहों में चार तो चन्द्रमा हैं जिनके सम्बन्ध में कुछ जानकारी प्राप्त की जा सकी है। जनवरी, सन् १६१० ई० मे गैलीलियो ने अपने नये दूरबीन से उन्हें देखा था।

एक दुनिया में नौ चन्द्रमा

तीन शताब्दी तक बृहस्पति के उक्त चार चन्द्रमाओं के अतिरिक्त और किसी उपग्रह का पता नहीं लगाया जा सका था, फिर १८९२ ई० में अमेरिका की लिक-नक्षत्र-शाला में प्रोफ़ेसर बर्नार्ड ने एक पाँचवें उपग्रह का पता लगाया। यह उपग्रह इतना छोटा है, कि बहुत बडे यन्त्र से ही देखा जा सकता है। यह चन्द्रमा बृहस्पति का सब से निकटवर्ती उपग्रह है, जो उसके केन्द्र से केवल ११२,५०० मील की दूरी पर है, और जिसका व्यास १०० मील से अधिक नहीं है।

किन्तु यह बृहस्पति का सब से छोटा चन्द्रमा नहीं है। वर्तमान शताब्दी मे चार और उपग्रह फोटोग्राफी-द्वारा मालूम किये गये हैं, और नवे चन्द्रमा का व्यास तो सम्भवत' लगभग १५ मील ही है, और आठवाँ इससे कुछ बडा। जिन चार चन्द्रमाओं का पता गैलीलिओ ने लगाया था, वे बहुत बडे हैं, और उनके व्यास २०६० मील से ३५८० मील तक हैं।

बृहस्पति के चौथे चन्द्रमा का रग बहुत काले रँग का

है। इसका कारण अभी तक नहीं जाना जा सका है। जब यह चाँद बृहस्पति पर अपनी छाया डालता हुआ गुज़रता है, तो उसकी अपनी छाया से उसकी छाया मुश्किल-से अलग देखी जा सकती है। बाक़ी चन्द्रमाओं की रोशनी चन्द्रमा पर स्पष्ट दीखती है।

अन्वेषण में सहायक।

बृहस्पति के दो चाँद, जो सब से अधिक दूरी पर हैं, वे ७० लाख मील की दूरी पर घूमते हैं, और उनका चक्कर पूरा होने में दो वर्ष लग जाते हैं। हमारे चन्द्रमा की तरह बृहस्पति के चन्द्रमाओं में भी ग्रहण लगते हैं, और वास्तव में इन ग्रहणों के कारण ही मनुष्य उनके प्रकाश की गति समझकर यह सब हिसाब लगा सका है। पहले यह समझा जाता था, कि रोशनी की चाल असीम है, या फिर रोशनी की कोई चाल ही नहीं है, किन्तु अब उसकी निश्चित गति मालूम होजाने के कारण खगोल-विद्या के ज्ञान में बहुत सहायता मिली है।

बृहस्पति के उपग्रहों मे चार तो चन्द्रमा है, जिनके सम्बन्ध मे कुछ जानकारी प्राप्त की जा सकी है। जनवरी, सन् १६१० ई० मे गैलीलियो ने अपने नये दूरबीन से उन्हें देखा था।

एक दुनिया में नौ चन्द्रमा

तीन शताब्दी तक बृहस्पति के उक्त चार चन्द्रमाओं के अतिरिक्त और किसी उपग्रह का पता नही लगाया जा सका था, फिर १८९२ ई० मे अमेरिका की लिक-नक्षत्र-शाला में प्रोफेसर बर्नार्ड ने एक पाँचवे उपग्रह का पता लगाया। यह उपग्रह इतना छोटा है, कि बहुत बडे यन्त्र से ही देखा जा सकता है। यह चन्द्रमा बृहस्पति का सब से निकटवर्ती उपग्रह है, जो उसके केन्द्र से केवल ११२,५०० मील की दूरी पर है, और जिसका व्यास १०० मील से अधिक नहीं है।

किन्तु यह बृहस्पति का सब से छोटा चन्द्रमा नहीं है। वर्तमान शताब्दी मे चार और उपग्रह फोटोग्राफी-द्वारा मालूम किये गये हैं, और नवे चन्द्रमा का व्यास तो सम्भवतः लगभग १५ मील ही है, और आठवाँ इससे कुछ बडा। जिन चार चन्द्रमाओं का पता गैलीलिओ ने लगाया था, वे बहुत बडे हैं, और उनके व्यास २०६० मील से ३५८० मील तक हैं।

बृहस्पति के चौथे चन्द्रमा का रग बहुत काले रँग का

है। इसका कारण अभी तक नहीं जाना जा सका है। जब यह चाँद बृहस्पति पर अपनी छाया डालता हुआ गुजरता है, तो उसकी अपनी छाया से उसकी छाया मुश्किल-से अलग देखी जा सकती है। बाक़ी चन्द्रमाओं की रोशनी चन्द्रमा पर स्पष्ट दीखती है।

अन्वेषण में सहायक।

बृहस्पति के दो चाँद, जो सब से अधिक दूरी पर हैं, वे ७० लाख मील की दूरी पर घूमते हैं, और उनका चक्कर पूरा होने में दो वर्ष लग जाते हैं। हमारे चन्द्रमा की तरह बृहस्पति के चन्द्रमाओं में भी ग्रहण लगते हैं, और वास्तव में इन ग्रहणों के कारण ही मनुष्य उनके प्रकाश की गति समझकर यह सब हिसाब लगा सका है। पहले यह समझा जाता था, कि रोशनी की चाल असीम है, या फिर रोशनी की कोई चाल ही नहीं है, किन्तु अब उसकी निश्चित गति मालूम होजाने के कारण खगोल-विद्या के ज्ञान में बहुत सहायता मिली है।

नारियल

— ❀ —

नारियल हिन्दुस्तान में बड़ा उपयोगी फल समझा जाता है। लड़के-लड़कियाँ नारियल की गिरी बड़े शौक़ से खाते हैं। लोग इसके आवरण का हुक्का बनाते हैं। इसकी जटा से रस्सियाँ और तरह-तरह की फ़र्श पर बिछाने की चीज़ें तैयार की जाती हैं। नारियल के अन्दर भरा हुआ पानी पीने में बड़ा स्वादिष्ट और पाचक होता है। नारियल की उपयोगिता का विवरण हम आगे देंगे।

नारियल भूमध्य-रेखा के निकटवर्ती देशों में प्रायः समुद्र के तट पर पाया जाता है। इसके वृक्ष बहुत लम्बे होते हैं। इसकी लम्बाई साधारणतः सौ-डेढ़-सौ फ़ीट होती है, और इसके सिरे पर बीस-बीस फीट लम्बी पत्तियाँ होती हैं। पत्तियों की संख्या बारह से बीस तक होती है।

नारियल की उपयोगिता

निश्चय ही नारियल संसार के सभी वृक्षों से अधिक उपयोगी होता है, क्योंकि हम उसके विभिन्न अङ्गों का अनेक प्रकार से उपयोग करते हैं। एक चीनी कहावत है, कि 'नारियल में ३६५ गुण होते हैं, और इसका वृक्ष लगानेवाला न-केवल अपने, और अपने बच्चों के खाने-

पीने का ही प्रबन्ध कर लेता है, वरन् अपनी शेष आव-श्यकताओं की भी पूर्ति कर लेता है—वह कपड़े और बर्तन-भाँडे से भी निश्चिन्त हो जाता है।

वास्तव में नारियल न केवल उन जगहों के अर्द्ध-सभ्य और देहाती लोगों के लिये ही उपयोगी होता है, जहाँ यह पैदा होता है, वरन् सभ्य-जगत् के नागरिक भी किसी-न-किसी रूप में नारियल की किसी-न किसी चीज का उप-योग करते हैं।

गर्म देशों में नारियल के फल की सफेद गिरी हजारों आदमी खाते हैं, और उसके अन्दर का रस पीते हैं। जिन जगहों में फ़सली बुखार होता है, वहाँ इसका जल स्वच्छ और छने पीना का-सा गुणदायक होता है।

नारियल के फूल के डण्ठलों से एक प्रकार का मीठा रस निकलता है, जिसे उबालकर गुड़ बनाते हैं, या सड़ा देकर ताड़ी तैयार करते हैं। गिरी को पेलने पर इसमें से बहुत ही अच्छा तेल निकलता है, जो बालों और सिर में लगाने के काम आता है। इस तेल से औषधियाँ और साबुन भी बनाये जाते हैं।

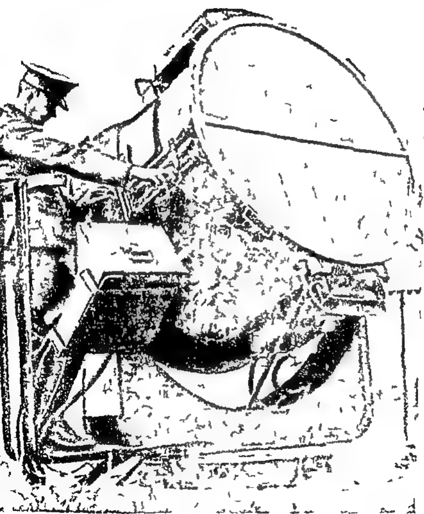
किन्तु फल का ऊपर यानी जटावाला [illegible] भी बड़ा उपयोगी होता है—इसमें पतले-पतले [illegible] हैं, रस्सियाँ बनाकर बुनाई के काम में [illegible] भी बनाये जाते हैं—नारि

आता है, और चूँकि इस खींचने की क्रिया में दूषित पदार्थ नीचे ही छोड़कर शुद्ध और छना हुआ जल फल में आता है, अत यह स्वास्थ्य के लिये उपयोगी सिद्ध हुआ है। वास्तव में इसी जल से धीरे-धीरे जमते-जमते वह मोटी गिरी बनती है, जिसे हम खाते हैं। आरम्भ में यह चीज एक छोटी गाँठ के रूप में होता है, फिर धीरे-धीरे फूलकर बड़ा होजाता है।

सौ मील प्रकाश फेंकनेवाला यंत्र

—꧁०꧂—

आधुनिक सर्च-लाइट (प्रकाश-ग्राहक यंत्र) विज्ञान की एक अद्भुत करामात है। रोशनी फेंकनेवाला यंत्र तो देखने में बहुत साधारण है, जैसाकि इस चित्र से मालूम होगा। पर इसकी मशीन ऐसी है, कि यह सभी तरफ़ को घुमाया जा सकता है, और सभी ओर इससे प्रकाश उसी प्रकार फेंका जा सकता है, जैसे हाथ से बैटरी लेकर चारों ओर रोशनी डाल सकते हैं। इसकी रोशनी कभी बिजली की होती है, और कभी गैस की। इसमें रोशनी को प्रतिबिम्बित करनेवाले शीशे में बहुत-ही बढ़िया पॉलिश की हुई होती है। गत महायुद्ध में इस प्रकार के यन्त्रों का उपयोग बहुत हुआ था। १९१५ ई० तक प्रति वर्ग-मील मीटर केवल १६० कैंडिल की ताक़त की रोशनी जलती थी, पर बाद में एल्मर स्प्रेन-नामक एक अमेरिकन ने एक नये सिद्धान्त पर ऐसे प्रकाश-यन्त्र का निर्माण किया, जो प्रति वर्ग-मील मीटर ९०० कैंडिल ताक़त की रोशनी फेंक सकता है। (६४५ वर्ग मिली-मीटर मिलकर एक वर्ग इंच होता है) प्रकाश-यन्त्र और भी ज़्यादा ताक़त



सौ मील प्रकाश फेंकनेवाला लैम्प

सौ मील प्रकाश फेंकनेवाला यंत्र

— ३०८ —

आधुनिक सर्च-लाइट (प्रकाश-वाहक यंत्र) विज्ञान की एक अद्भुत करामात है। रोशनी फेंकनेवाला यंत्र तो देखने में बहुत साधारण है, जैसाकि इस चित्र से मालूम होगा। पर इसकी मशीन ऐसी है, कि यह सभी तरफ़ को घुमाया जा सकता है, और सभी ओर इससे प्रकाश उसी प्रकार फेंका जा सकता है, जैसे हाथ से बैटरी लेकर चारों ओर रोशनी डाल सकते हैं। इसकी रोशनी कभी बिजली की होती है, और कभी गैस की। इसमें रोशनी को प्रतिबिम्बित करनेवाले शीशे में बहुत-ही बढ़िया पॉलिश की हुई होती है। गत महायुद्ध में इस प्रकार के यन्त्रों का उपयोग बहुत हुआ था। १९१५ ई० तक प्रति वर्ग-मील मीटर केवल १६० कैंडिल की ताक़त की रोशनी जलती थी, पर बाद में एल्मर स्प्रेन-नामक एक अमेरिकन ने एक नये सिद्धान्त पर, ऐसे प्रकाश-यन्त्र का निर्माण किया, जो प्रति वर्ग-मील मीटर ९०० कैंडिल ताक़त की रोशनी फेंक सकता है। (६४५ वर्ग मिली-मीटर मिलकर एक वर्ग इंच होता है) उस समय से प्रकाश-यन्त्र और भी ज्यादा ताक़त के तैयार होने लगे हैं।



दूरबीन की कहानी

—※—

दूरबीन वैज्ञानिकों और विशेषत खगोल-विदों का सब से आवश्यक हथियार है। इसके बिना खगोल-विद्या के क्षेत्र में एक क़दम भी आगे नहीं चला जा सकता। हम यहाँ यह बतलाने की चेष्टा करेंगे, कि दूरबीन का आविष्कार किस रूप में हुआ।

दूरबीन का आविष्कर किसने किया, यह निश्चित् रूप से नहीं कहा जा सकता। यद्यपि इस बात में बहुत कम सन्देह है, कि पहले-पहल इसका आविष्कार एक हॉलैण्ड-निवासी ने किया था।

इसके सम्बन्ध मे एक कहानी है। एक चश्मे के सौदागर के बच्चे एक बार चश्मे के शीशों से खेल रहे थे। उन्होंने अकस्मात् देखा, कि एक के सामने दूसरा शीशा करके देखने पर दूर की चीज़ कुछ करीब नज़र है। ये बच्चे ज़चारिया जॉनसेन के थे, जो मिडि एक व्यापारी था। वे बच्चे प्राय चश्मों के शीशे लगाकर कौतुक-वश देखा करते थे। एक बच्चे ने आँख वे लगाकर

यह कहकर चिल्ला उठा, कि गिरजाघर का कलश उस शीशे से देखने पर क़रीब दिखायी देता है।

उस बच्चे का बाप बच्चे की आवाज़ सुनकर दूकान से बाहर आया, और एक शीशे को ठीक सामने कुछ ही फ़ासले पर लगाकर गिरजा की तरफ़ से देखने पर उसे भी कलश अपेक्षाकृत नज़दीक दिखाई दिया। इसके बाद उसने एक लकड़ी के तख़्ते पर दो शीशे आमने-सामने जमा दिये, और उससे दूर की चीज़ देखने का काम लेने लगा। संसार में यही पहला दूरबीन था।

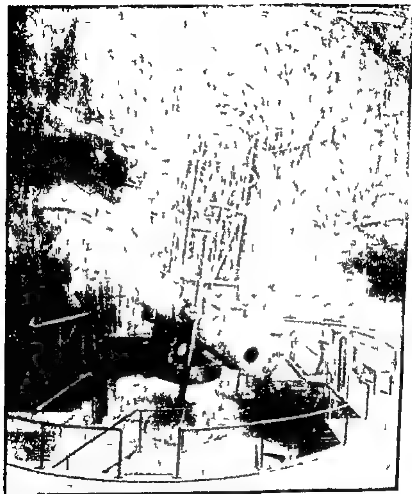
लोभी दूरबीन के आविष्कार का श्रेय एक डच को दिया जाता है। यह भी चश्मे बनाने का काम करता था, और मिडिलवर्ग का रहनेवाला था। उसका नाम था, हैंज़ लियर्शी, और उसे भी इस दूरबीन के आविष्कार का ज्ञान आकस्मिक रूप से ही हुआ था। उसने भी शीशों से देखकर गिरजे की मीनार को करीब देखा था। जेम्स मित्यूज़-नामक एक तीसरे व्यक्ति को भी लोग दूरबीन का आविष्कारक क़रार देते हैं। किन्तु आविष्कारक चाहे जो रहा हो, यह बात सच है, कि पहले-पहल इसका आविष्कार हॉलैण्ड में ही हुआ था, और यह चीज़ पहले-पहल यहीं बनी थी।

जब १६०८ ई० में लियर्शी ने हॉलैण्ड-सरकार से प्रार्थना की, कि वह उसके दूरबीन की रजिस्ट्री-पेटेण्ट कर दे, तो

सरकार ने यह कहकर उसकी अर्जी नामञ्जूर कर दी, यह आविष्कार तो पहले से ही मालूम था। किन्तु हॉलै के जनरल ने उसे एक-दो दूरबीन का बनाकर देने ऑर्डर दिया, और उससे यह भी कह दिया, कि वह आविष्कार को गुप्त रक्खे। उस समय हॉलैण्ड में युद्ध रहा था, अत सरकार ने इस यन्त्र-द्वारा शत्रु-दल दूर से भी देख सकने की सुविधा का सदुपयोग कर चाहा।

धीरे-धीरे दूरबीन पेरिस-आदि उत्तरी यूरोप के शह में फैलने लगा। प्रसिद्ध इटैलियन खगोलविद् गैलीलि ने इस आविष्कार की बात सुनी, और उसे प्राप्त ना कर सका, तो उसने स्वय ऐसा एक यन्त्र बनाने का निश्च किया, और कई ऐसे दूरबीन बना डाले, जिससे उस ग्रहों को देखने में काफी सफलता प्राप्त की। वास्तव दूरबीन के आविष्कार की सफलता का श्रेय गैलीलियो क ही दिया जाता है, क्योंकि उसमें उस समय आवश्य सुधार उसी ने किये थे, और उसे ऐसा बना दिया थ जिसके द्वारा कितनी ही आश्चर्यजनक बातों का आवि ष्कार हुआ।

अपने दूरबीन से गैलीलियो ने पहला आविष्कार या किया था कि सूर्य पर निशान दिखायी देते हैं। इसके बा उसने मालूम किया कि शुक्र तारे का दृश्य चन्द्रमा के दृश्



ससार का सब से बड़ा दूरबीन

से मिलता है—अर्थात् वह कभी गोलाकार होता है, तो कभी दूज के चाँद की तरह रेखावत् दीखता है। इसके बाद उसने यह मालूम किया, कि बृहस्पति के साथ चार चन्द्रमा हैं। फिर यह आविष्कार किया, कि शनि ग्रह के चारों ओर अँगूठीनुमा चक्र है, यद्यपि वह इस बात का निश्चय नहीं कर सका था कि यह चक्र वास्तव में है क्या चीज। उसने समझा था कि वे उपग्रह हैं, जो इस ग्रह के दोनों ओर फैले हुए हैं।

गैलीलियो के सब से बढ़िया दूरबीन में साधारण शीशे से केवल लगभग ३० गुनी ताकत थी, क्योंकि उस समय शीशे का काम भी अपूर्ण था, इसीलिये उस समय बना हुआ उसका सब से अच्छे-से-अच्छा दूरबीन आजकल के खराब-से-खराब दूरबीनों के मुकाबले का भी नहीं था। किन्तु उस समय भी जहाजवालों के लिये यह दूरबीन बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ था।

दूरबीन के आखिरी सिरे पर जो शीशा लगा होता है, उससे दूरवर्ती चीज क़रीब दिखायी देती है, और फिर आँख के पासवाला शीशा उसे बर्द्धित रूप में दिखाता है। यह दूरबीन ऐसा होता है, जिसमें प्रकाश की किरणें जज्ब होती हैं।

दूसरे प्रकार का दूरबीन प्रतिबिम्ब-वाला होता है। क्योंकि जो चीज देखनी होती है, उसका प्रतिबिम्ब पहले

शीशे पर पड़ता है, जो फिर आँख के पासवाले शीशे पर पड़ता है। खगोलविदों ने अनेक प्रकार के दूरबीन बनाये हैं। ससार में जो बहुत बडे और आश्चर्यजनक दूरबीन हैं, वे सब प्रतिबिम्ब-वाले ही हैं।

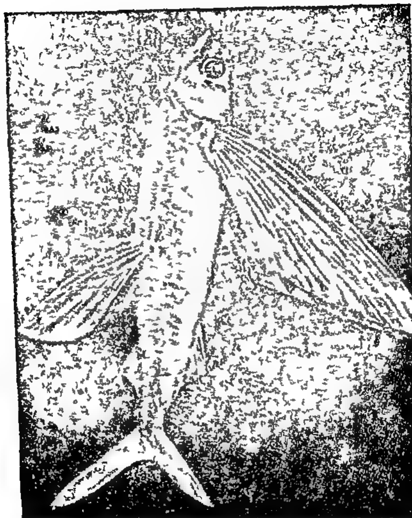
निकट-ही ससार के सब से बड़े दूरबीन का चित्र है, जिसका प्रतिबिम्ब-वाला शीशा १०० इञ्च का है। यह दूरबीन माउण्ट विल्सन-वेध-शाला, केलीफोर्निया (अमेरिका) में है। इसका एक-एक पुर्जा एक बडी मशीन-सा दीखता है, और इसमें बहुत-ही बारीक यत्र लगाकर इसे इस प्रकार का बना लिया गया है, कि इसे सब दिशाओं और सब कोणों में घुमा-फिरा सकते हैं। इसका वजन कुल २,६०० मन के लगभग है। इसका शीशा १२२ मन के लगलग है, जिसके तैयार करने में दस वर्ष लग गये थे।

आकाश में उड़नेवाली मछलियाँ

—— ०⚬० ——

लोगों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि उड़नेवाले जन्तुओं में न होते हुए भी समुद्र में एक प्रकार की मछली ऐसी होती है, जो समुद्र की सतह से ५०० फ़ीट या इससे भी अधिक ऊँचाई तक उडती है। इस मछली की गणना यद्यपि उड़नेवाले पक्षियों में न होकर, तैरनेवाली मछलियों में होती है, पर इसके उड़ाकूपन में बिल्कुल ही सन्देह नहीं है। यह उडती भी बहुत तेजी से है, पर ऊपर जाकर धीरे-धीरे इसकी गति शिथिल हो जाती है। तो भी यह मछली उड़ने में दस मील फ़ी-घण्टा की रफ़्तार से जानेवाले जहाज़ से पीछे नहीं रह सकती।

इस मछली में एक विशेषता यह है, कि यह हवा के झोंके के विरुद्ध बडी सफलतापूर्वक उडती है—चाहे हवा के रुख के साथ या तिरछे उडने में उसकी उड़ान की गति मध्यम ही क्यों न हो, पर हवा के झोंकों के विरुद्ध यह पूरी तेजी से उडती है। जिस समय हवा के झोंके जोरों से चलते हैं, उस समय तो यह टेढ़ी-मेढ़ी उडती दिखाई देती है, पर जब मौसम ठीक होता है, तो इसकी उडान सीधी होती है। मौसिम ख़राब होने या हवा के ...



आकाश-मछली

आकाश में उड़नेवाली मछलियाँ

लोगों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि उड़नेवाले जन्तुओं में न होते हुए भी समुद्र में एक प्रकार की मछली ऐसी होती है, जो समुद्र की सतह से ५०० फ़ीट या इससे भी अधिक ऊँचाई तक उड़ती है। इस मछली की गणना यद्यपि उड़नेवाले पक्षियों में न होकर, तैरनेवाली मछलियों में होती है, पर इसके उड़ाकूपन में बिल्कुल ही सन्देह नहीं है। यह उड़ती भी बहुत तेज़ी से है, पर ऊपर जाकर धीरे-धीरे इसकी गति शिथिल हो जाती है। तो भी यह मछली उड़ने में दस मील फ़ी-घण्टा की रफ़्तार से जानेवाले जहाज़ से पीछे नहीं रह सकती।

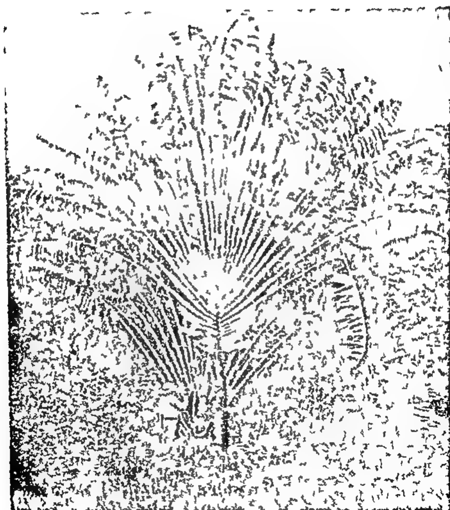
इस मछली में एक विशेषता यह है, कि यह हवा के झोंके के विरुद्ध बड़ी सफलतापूर्वक उड़ती है—चाहे हवा के रुख के साथ या तिरछे उड़ने में उसकी उड़ान की गति मध्यम ही क्यों न हो, पर हवा के झोंकों के विरुद्ध यह पूरी तेज़ी से उड़ती है। जिस समय हवा के झोंके ज़ोरों से चलते हैं, उस समय तो यह टेढ़ी-मेढ़ी उड़ती दिखाई देती है, पर जब मौसम ठीक होता है, तो इसकी उड़ान सीधी होती है। मौसिम ख़राब होने या हवा के टेढ़े-मेढ़े

झोंके आने पर यह लहराकर ऊपर-नीचे तथा अगल-बगल होकर उड़ती है।

एटलाण्टिक-महासागर में तथा और जगहों पर, जहाँ यह उडनेवाली मछलियाँ पायी जाती हैं—प्राय उड़ते-उडते यह मछली जहाज के डेकों पर आ-पडती है। उडते समय इस मछली को खतरा भी होता है, क्योंकि इसके शत्रु-पक्षी उसका पीछा करते हैं।

जिस समय हवा तेज चलती है, तो ये मछलियाँ जहाज के मस्तूल की ऊँचाई तक उडती देखी जाती हैं, और कभी-कभी वे जहाज के केबिनों की खिडकी से भी आ-टकराती हैं।

उडनेवाली मछलियाँ भी अनेक प्रकार की होती है। कुछ ऐसी भी होती हैं, जिनके मुँह की बनावट मोटी और ऐसी सुरक्षित होती है, कि उस पर जल्दी चोट नही लगती। उसके पर ऐसे लम्बे और रङ्ग-बिरंगे होते हैं, कि देखनेवालों को वह एक बडी तितली-सी मालूम होती है।



प्यास बुझानेवाला वृक्ष

पानी का पेड़ ।

— ❀ —

संसार-भर में सब से उपयोगी और महत्वपूर्ण वृक्ष 'पानी का पेड़' है, जो यात्रियों को जीवन-दान देता है। यह वृक्ष मैडगास्कर, ब्राजील और गाइना में विशेष रूप से पाया जाता है। दक्षिणी अमेरिका में भी अफ्रीका के द्वीपों के-से 'पानी के पेड़' पाये जाते हैं। यह वृक्ष केले की भाँति का होता है, और इसकी पत्तियाँ केले की पत्तियों से मिलती-जुलती और उससे बड़ी होती हैं। इसके वृक्ष छोटे-बड़े दोनों तरह के होते हैं। कहीं तो इसकी पत्तियाँ जमीन से ही उगी दिखायी देती हैं, और कहीं उसके पेड़ की ऊँचाई ६० फीट तक होती है, और पत्तियाँ तने के सिरे पर निकली हैं। तने पर पुरानी पत्तियों के निशान होते हैं। इसकी पत्तियों की डण्ठलें पानी से भरी होती हैं, और जब उन्हें काटा जाता है, तो उनसे साफ़ पानी निकलता है— यह पानी यद्यपि स्वाद में बिल्कुल पानी-जैसा रुचिकर नहीं होता, फिर भी पानी की कमी की अवस्था में यात्रियों के लिये बहुत उपयोगी होता है। इन डण्ठलों में एक-एक इंच के पोरों में पानी भरा होता है ।

सूर्य-ग्रहण

— ❀ —

यह अद्भुत बात है, कि हम सूर्य के सम्बन्ध में उस समय भी लगभग उतना ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं, जब वह चन्द्रमा की आड में छिपा रहता है, जितना उसके दिन के चमकने पर मालूम कर सकते हैं। किन्तु यह बात सच है, क्योंकि जिस समय पूरा सूर्य-ग्रहण लगता है, तो हम उसके चारों ओर फैले वृत्त (वायु-मण्डल) को देख सकते हैं—साथ ही उसका फोटोग्राफ लेकर भी उसका अध्ययन कर सकते हैं। यह मण्डल उन प्रज्वलित गैसों से बन जाता है, जो सूर्य के चारों ओर फैली होती है।

हज़ारों वर्ष से लोग सूर्य-ग्रहण देखते-सुनते और अध्ययन करते आये हैं, किन्तु जो ग्रहण १८४२ ई० में यूरोप में लगा था, उसी से इस बात का पता लगा था कि सूर्य के गिर्द चमकीली हाइड्रोजेन गैस होती है। फलत उस समय से लोग सूर्य और उसके पार्श्ववर्ती स्थलों के सम्बन्ध में बहुत-कुछ जान गये हैं।

सूर्य-ग्रहण वास्तव मे क्या है ? पुराने ज़माने से अब तक इसके सम्बन्ध में लोगों के विचार भ्रमात्मक विलक्षण रहे हैं। केवल हमारे ही देश में इस सम्-

अन्ध-विश्वास प्रचलित हों, यह बात नहीं है। चीन के लोगों का यह ख्याल है, कि सूर्य और चन्द्रमा को अजगर निगलते हैं, और वे ग्रहण लगने पर उससे उसे छुड़ाने के लिये ढोल पीटते और चिल्लाते हैं। सुसभ्य इँग्लैण्ड मे भी पुराने जमाने में इसी से मिलता-जुलता अन्ध-विश्वास प्रचलित था। वहाँ के लोग समझते थे कि दो बड़े जबर्दस्त भेड़िये सूर्य और चन्द्रमा को आसमान में खदेड़ते रहते हैं, और समय-समय पर जब वह उन्हें पकड़ते हैं, तो वे छिप जाते हैं। अभी अठारहवीं सदी तक इँग्लैण्ड के डॉक्टरों तक मे यह अन्ध विश्वास था कि सूर्य-ग्रहण लगने पर जहरीला कुहरा पड़ता है, इसलिये वे तमाम कुओं को ढकवा देते थे, कि कहीं उनमें जहर प्रविष्ट न हो जाय। करोड़ों आदमियों का यह विश्वास था, कि ग्रहण लगने पर संसार सङ्कट में पड़ जाता है।

एक बार पूरा सूर्य ग्रहण लगने पर नेटाल मे बड़ी मनोरंजक घटना हुई। हीरे की खान के एक गोरे मालिक ने अपने मजदूरों के अन्ध-विश्वास से लाभ उठाने के लिये एक किस्सा गढ़ लिया। सूर्य-ग्रहण के कुछ ही समय पहले उसने मजदूरों से कहा—"सूर्य मरने जा रहा है, लेकिन अगर हम लोग उसे एक बहुत बड़ा हीरा भेंट कर सकें, तो शायद जी उठेगा।" इस पर भोले-भाले अफ्रीकन मजदूरों ने बहुत परिश्रम से खान खोदी, और वास्तव में

और हीरों के साथ एक ४५ रत्ती का बडा हीरा भी निकाला। वे बडी खुशी के साथ उसे अपने मालिक के पास लेगये।

"मैं समझता हूँ, इससे सूर्य फिर जीवित हो उठेगा।" चालाक गोरे-मालिक ने कहा, और सचमुच कुछ-ही मिनटों बाद ग्रहण मे ढका हुआ सूर्य पुन चमकने लगा।

किन्तु एक घटना ऐसी भी हुई थी, जिसमें एक गोरे-मालिक को अपने मजदूरों की जिद के सामने नीचा देखना पडा था। सूर्य-ग्रहण होने के बाद जब फिर सूर्य का प्रकाश हुआ, तो मजदूरों ने हठ किया कि सूर्य अस्त हो जाने पर बीच में रात आगयी थी, और अब दूसरा दिन शुरू होगया है, इसलिये हम दो दिन की मजदूरी लेंगे, जो उन्हें मिली।

किन्तु अब यह समय आगया है, जब हम सूर्य-ग्रहण के वैज्ञानिक कारण को जान और समझ गये हैं। इसका सीधा और स्पष्ट कारण यह है कि चन्द्रमा पृथ्वी के गिर्द घूमते हुए कभी-कभी हमारे और सूर्य के बीच में आजाता है, और यद्यपि वह सूर्य की अपेक्षा बहुत छोटा होता है, पर सूर्य की अपेक्षा हमारे बहुत निकट होने के कारण सूर्य-मण्डल को पूर्णत ढक सकता है। जब कभी कोई अँधेरा या प्रकाश-हीन ग्रह प्रकाशवान् ग्रह-द्वारा प्रकाशित होता है, तो प्रकाशहीन ग्रह अपने नीचे छाया डालता है,

और कोई भी प्रकाशित चीज, जो छाया में आती है, अँधेरी-की अँधेरी रह जाती है। सूर्य-ग्रहण के समय ठीक यही बात होती है।

पृथ्वी और चन्द्रमा में अपना निजी प्रकाश नहीं होता, ये दोनों ही सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होते हैं, और ये सूर्य के विरुद्ध दिशा में छाया फेंकती हैं। कभी चन्द्रमा उस छाया में पड जाता है, जो पृथ्वी से उत्पन्न होती है, तो चन्द्र-ग्रहण लगता है, और कभी पृथ्वी चन्द्रमा की छाया में प्रवेश करती है, और इस प्रकार सूर्य-ग्रहण लगता है।

एक सीधे-से प्रयोग के द्वारा हम देख सकते हैं, कि सूर्य-ग्रहण किस प्रकार लगता है। अगर हम किसी बडी सुई में एक नारंगी पिरोकर उसे चन्द्रमा मान ले—और जलती हुई बत्ती को सूर्य मानकर उसकी ओर मुँह करके खडे हो जायें, तो हमारा सिर पृथ्वी माना जा सकता है। अब अगर हम कल्पित चन्द्रमा को इस प्रकार अपने मुँह के सामने लाये कि वह हमारे सिर (पृथ्वी) और बत्ती (सूर्य) के बीच में आजाय, तो हम देखेंगे कि नारङ्गी (चन्द्रमा) बत्ती (सूर्य) को अँधेरे में कर देती है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि चन्द्रमा के पृथ्वी और सूर्य के बीच में आने पर सूर्य ग्रहण कैसे लग सकता है।

और हीरों के साथ एक ४५ रत्ती का बड़ा हीरा भी निकाला। वे बड़ी खुशी के साथ उसे अपने मालिक के पास लेगये।

"मैं समझता हूँ, इससे सूर्य फिर जीवित हो उठेगा।" चालाक गोरे-मालिक ने कहा, और सचमुच कुछ-ही मिनटों बाद ग्रहण में ढका हुआ सूर्य पुन चमकने लगा।

किन्तु एक घटना ऐसी भी हुई थी, जिसमें एक गोरे-मालिक को अपने मजदूरों की जिद के सामने नीचा देखना पड़ा था। सूर्य-ग्रहण होने के बाद जब फिर सूर्य का प्रकाश हुआ, तो मजदूरों ने हठ किया कि सूर्य अस्त हो जाने पर बीच में रात आगयी थी, और अब दूसरा दिन शुरू होगया है, इसलिये हम दो दिन की मजदूरी लेंगे, जो उन्हे मिली।

किन्तु अब वह समय आगया है, जब हम सूर्य-ग्रहण के वैज्ञानिक कारण को जान और समझ गये हैं। इसका सीधा और स्पष्ट कारण यह है कि चन्द्रमा पृथ्वी के गिर्द घूमते हुए कभी-कभी हमारे और सूर्य के बीच में आजाता है, और यद्यपि वह सूर्य की अपेक्षा बहुत छोटा होता है, पर सूर्य की अपेक्षा हमारे बहुत निकट होने के कारण सूर्य-मण्डल को पूर्णत ढक सकता है। जब कभी कोई अँधेरा या प्रकाश-हीन ग्रह प्रकाशवान् ग्रह-द्वारा प्रकाशित होता है, तो प्रकाशहीन ग्रह अपने नीचे छाया डालता है,

और कोई भी प्रकाशित चीज, जो छाया में आती है, अँधेरी-की अँधेरी रह जाती है। सूर्य-ग्रहण के समय ठीक यही बात होती है।

पृथ्वी और चन्द्रमा मे अपना निजी प्रकाश नहीं होता, ये दोनों ही सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होते हैं, और ये सूर्य के विरुद्ध दिशा में छाया फेंकती हैं। कभी चन्द्रमा उस छाया में पड जाता है, जो पृथ्वी से उत्पन्न होती है, तो चन्द्र-ग्रहण लगता है, और कभी पृथ्वी चन्द्रमा की छाया मे प्रवेश करती है, और इस प्रकार सूर्य-ग्रहण लगता है।

एक सीधे-से प्रयोग के द्वारा हम देख सकते हैं, कि सूर्य-ग्रहण किस प्रकार लगता है। अगर हम किसी बड़ी सुई में एक नारगी पिरोकर उसे चन्द्रमा मान लें—और जलती हुई बत्ती को सूर्य मानकर उसकी ओर मुँह करके खडे हो जायँ, तो हमारा सिर पृथ्वी माना जा सकता है। अब अगर हम कल्पित चन्द्रमा को इस प्रकार अपने मुँह के सामने लायें कि वह हमारे सिर (पृथ्वी) और बत्ती (सूर्य) के बीच में आजाय, तो हम देखेंगे कि नारङ्गी (चन्द्रमा) बत्ती (सूर्य) को अँधेरे में कर देती है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि चन्द्रमा के पृथ्वी और सूर्य के बीच में आने पर सूर्य-ग्रहण कैसे लग सकता है।

और हीरों के साथ एक ४५ रत्ती का बडा हीरा भी निकाला। वे वडी खुशी के साथ उसे अपने मालिक के पास लेगये।

"मैं समझता हूँ, इससे सूर्य फिर जीवित हो उठेगा।" चालाक गोरे-मालिक ने कहा, और सचमुच कुछ-ही मिनटों वाद ग्रहण में ढका हुआ सूर्य पुन चमकने लगा।

किन्तु एक घटना ऐसी भी हुई थी, जिसमें एक गोरे-मालिक को अपने मजदूरों की जिद के सामने नीचा देखना पडा था। सूर्य-ग्रहण होने के वाद जब फिर सूर्य का प्रकाश हुआ, तो मजदूरों ने हठ किया कि सूर्य अस्त हो जाने पर बीच में रात आगयी थी, और अब दूसरा दिन शुरू होगया है, इसलिये हम दो दिन की मजदूरी लेंगे, जो उन्हें मिली।

किन्तु अब वह समय आगया है, जब हम सूर्य-ग्रहण के वैज्ञानिक कारण को जान और समझ गये हैं। इसका सीधा और स्पष्ट कारण यह है कि चन्द्रमा पृथ्वी के गिर्द घूमते हुए कभी-कभी हमारे और सूर्य के बीच में आजाता है, और यद्यपि वह सूर्य की अपेक्षा वहुत छोटा होता है, पर सूर्य की अपेक्षा हमारे वहुत निकट होने के कारण सूर्य-मण्डल को पूर्णत ढक सकता है। जब कभी कोई अँधेरा या प्रकाश-हीन ग्रह प्रकाशवान् ग्रह-द्वारा प्रकाशित होता है, तो प्रकाशहीन ग्रह अपने नीचे छाया डालता है,

और कोई भी प्रकाशित चीज, जो छाया मे आती है, अँधेरी-की अँधेरी रह जाती है। सूर्य-ग्रहण के समय ठीक यही बात होती है।

पृथ्वी और चन्द्रमा मे अपना निजी प्रकाश नहीं होता, ये दोनों-ही सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होते हैं, और ये सूर्य के विरुद्ध दिशा मे छाया फेंकती हैं। कभी चन्द्रमा उस छाया में पड जाता है, जो पृथ्वी से उत्पन्न होती है, तो चन्द्र-ग्रहण लगता है, और कभी पृथ्वी चन्द्रमा की छाया मे प्रवेश करती है, और इस प्रकार सूर्य-ग्रहण लगता है।

एक सीधे-से प्रयोग के द्वारा हम देख सकते हैं, कि सूर्य-ग्रहण किस प्रकार लगता है। अगर हम किसी बडी सुई में एक नारगी पिरोकर उसे चन्द्रमा मान ले—और जलती हुई बत्ती को सूर्य मानकर उसकी ओर मुँह करके खडे हो जायँ, तो हमारा सिर पृथ्वी माना जा सकता है। अब अगर हम कल्पित चन्द्रमा को इस प्रकार अपने मुँह के सामने लाये कि वह हमारे सिर (पृथ्वी) और बत्ती (सूर्य) के बीच में आजाय, तो हम देखेंगे कि नारङ्गी (चन्द्रमा) बत्ती (सूर्य) को अँधेरे में कर देती है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि चन्द्रमा के पृथ्वी और सूर्य के

जिस समय घूमते-घूमते चन्द्रमा की छाया पृथ्वी पर पड़ती है, तो पृथ्वी के जिस भाग पर वह छाया गहरी (सीधी) पड़ती है, वहाँ सूर्य-ग्रहण अधिक स्पष्ट रूप में दिखायी देता है, किन्तु जहाँ चन्द्रमा की छाया बिल्कुल नहीं पड़ती, वहाँ सूर्य-ग्रहण बिल्कुल नहीं दिखायी देता।

मङ्गल-ग्रह का सङ्केत

— ०%० —

मङ्गल-ग्रह में एक प्रकार का सङ्केत होता है, इसका पता पहले एक खगोल-विद् ने लगाया था, जिसका खयाल था कि इस ग्रह में नहरें हैं। कुछ वर्ष पहले मङ्गल-ग्रह के किनारे पर प्रकाश दिखायी पड़ा, जिससे कुछ लोगों ने यह सोचा कि मङ्गल-लोक-निवासी अपने लोक मे आग जलाकर पृथ्वी के निवासियों को कुछ सङ्केत करते हैं। पर, लोग भूल गये कि पृथ्वी पर एक विन्दु के बराबर दिखाने के लिये मङ्गल-लोक में जङ्गल-का-जङ्गल स्वाहा करना होगा। मङ्गल का यह काल्पनिक सङ्केत सम्भवत सूर्य के प्रकाश का प्रतिबिम्ब है, जो मङ्गल लोक के किसी पर्वत या बादल पर पड़कर चमकता है।

इन दिनों मङ्गल-लोक से आग जलाकर या अन्य प्रकार प्रकाश फेककर सङ्केत करने की बातें हम नहीं सुनते। यदि बहस के लिये यह मान भी लिया जाय, कि मङ्गल-लोक में बुद्धिमान् लोग रहते हैं, तो सब से अधिक सम्भावना तो इस बात की थी कि वह बेतार-के-तार द्वारा हमारी पृथ्वी के निवासियों से बातचीत कर सकते हैं। बेतार-के-तार . . . भेजने की चेष्टा करने के

मे काफी बातचीत हो चुकी है, पर कठिनाई तो यह है कि हम अभी तक यह नहीं जान सके हैं कि बेतार-के-तार का सङ्केत वायु-मण्डल के ऊपर भी जा सकता है या नहीं।

कुछ भी हो, सुदूरवर्ती ग्रहों को सङ्केत-द्वारा कोई सन्देश भेजना सन्देहजनक कार्य है। यदि मङ्गल-ग्रह में बुद्धिमान और सुसभ्य लोग भी रहते हों, तो यह जरूरी नहीं है, कि उन्होंने हम लोगों की तरह वैज्ञानिक उन्नति कर ली हो, और बेतार-के-तार का सन्देश ग्रहण करने के लिये यन्त्र लगा रक्खे हों। अन्य ग्रहों मे जीवधारियों के निवास करने की तो हम लोग कल्पना-मात्र करते हैं, क्योंकि अभी तक उनका कोई प्रमाण नहीं मिला है। हम कभी भी यह बात जान सकेंगे, इसमे भी सन्देह है। पर हमें कोई बात असम्भव नहीं समझनी चाहिए।

हवा के विषय में आश्चर्यजनक बातें



यद्यपि हम हवा को देख नहीं सकते, फिर भी हम जानते हैं, कि वास्तव में यह एक सार पदार्थ है।

हम जानते हैं कि हवा मे दवाव की बडी शक्ति होती है। और जब हम हवा के तेज झोंके के विरुद्ध चलते हैं, तब हमें उसकी ताक़त साफ मालूम हो जाती है, क्योंकि हमें बडा जोर लगाकर उसे चीरकर निकलना पडता है—और कभी-कभी तो तेज आँधी से मोटरें और रेल-गाडियों के डब्बे तक कहीं से कहीं चले जाते हैं। यही कारण है, कि पहाड़ियों की कगार पर चलना खतरनाक होता है, क्योंकि हवा का एक झोंका हमें ढकेलकर हजारों गज नीचे पटक दे सकता है।

हवा में खतरा।

कभी-कभी देहात में आँधी आजाने पर सडक के किनारे गडे हुए तार के सैकडों खम्बे तक गिर जाते हैं।

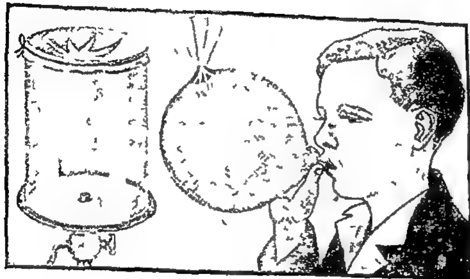
साधारणत हम हवा के दवाव का अनुभव नहीं करते, किन्तु वास्तव में यह दवाव होता बहुत अधिक है। यह दवाव हमारे शरीर के एक वर्ग इंच मे ७$\frac{1}{2}$ सेर

हवा की ताक़त

बहुत-से प्रयोगों-द्वारा हवा की ताक़त का पता लग सकता है। पहले हम एक ऐसा पात्र ले, जिसमें हवा की पिचकारी लगी हो—कहीं से हवा निकलने की जगह न हो; और उसके मुँह पर रवड का टुकडा कसकर बाँध दिया जाय। फिर पिचकारी-द्वारा अन्दर की हवा खींच ली जाय, लेकिन यह ध्यान रहे, कि बाहिर से हवा जाने के लिये पात्र में कहीं भी छिद्र न हो। ऐसी अवस्था में हम देखेगे कि हवा का दवाव वर्तन के मुँह पर बँधे हुए रबड के टुकडे को दवा देता है, और यदि पात्र मे से सारी हवा निकाल ली जा मके, तो सम्भवत हवा के दवाव से रवड़ फट भी जायगा।

इसका कारण यह है कि पात्र से हवा निकाल लेने पर रवड़ पर पात्र के अन्दर की अपेक्षा ऊपर की हवा का बोझ वहुत अधिक पडने लगता है। एक रवड का छोटा गुब्बारा लेकर हम इसके विपरीत परिणाम देख सकते हैं। गुब्बारे को फूँक-फूँककर बढाइये। उसके अन्दर लगातार अधिकाधिक हवा भरने पर अन्दर का वोझ बढ जाता है। अन्तत वहुत अधिक हवा भर जाने पर वह अवस्था आजाती है, कि रवड़ ऊपर की ओर फट जाती है, और हवा बाहर निकल जाती है।

बहुत दिनों की बात है। एक जर्मन वैज्ञानिक ने वहाँ



हवा की ताक़त पृष्ठ १६०

के सम्राट् के सामने एक प्रयोग किया था, जिससे उसने सिद्ध किया था, कि वायु-मण्डल का बोझ कितना अधिक होता है।

बात सन् १६५१ ई० की है। दरबार के सभी सरदारों की उपस्थिति में यह प्रयोग होनेवाला था। वान गेरिक (वैज्ञानिक) पहले भी यह प्रयोग कर चुका था। सम्राट् को जब इसकी खबर मिली, तो उन्होंने स्वयं उसके देखने के लिये आने का निश्चय किया। उस समय वायु-मण्डल के बोझ की बात साधारणतः अज्ञात थी। -

वान गेरिक ने ताँबे के दो कटोरदान-नुमा गोलार्द्ध बनवा रक्खे थे। उन दोनों को मिलाकर एक गोले के रूप में रक्खा गया, और दोनों गोलार्द्धों के मिलने की जगह से हवा अन्दर न जासके, इसके लिये उस जगह चमड़े का छल्ला तारपीन के तैल में भिगोकर रख दिया गया। वान गेरिक ने एक पिचकारी लेकर गोले में से हवा खींचली, और गोले के अन्दर की जगह वायु से लगभग शून्य करदी। हवा खींचने की पिचकारी भी गेरिक साहब ने थोड़े-ही दिन पहले आविष्कृत की थी।

जब गोले के अन्दर से सब हवा निकाल ली गयी, तो नली बन्द कर दी गयी, जिससे बाहर से हवा अन्दर न जासके। दोनों गोलार्द्ध एक-दूसरे से बँधे नहीं थे, किन्तु बाहरी हवा के बोझ ने उन्हें दबाकर मिला रक्खा

था। गोला काफी बडा था, इसलिये उसके बाह्य धरातल का क्षेत्रफल बहुत अधिक वर्ग-इञ्च था। इसलिये दोनों-ही गोलार्द्धों पर हवा का दबाव बहुत-ही अधिक था।

अब वान गेरिक का कौतूहलवर्द्धक प्रयोग शुरू हुआ। उसने दोनों गोलार्द्धों में आठ जबरदस्त घोडे जोत लिये, और उन्हे विपरीत दिशा में हाँकने लगे। बडी कठिनाई से वे घोडे उन दोनों गोलार्द्धों को एक-दूसरे से पृथक् कर सके।

वायु-मण्डल के बोझ का यह पहला बडा प्रमाण था। पर इस परीक्षण के बाद भी बहुत-से सन्देह ऐसे थे, जो इस बात पर विश्वास नही करने देते थे। इसलिये वान गेरिक को दूसरा प्रयोग करना पडा था।

एक पिचकारी से हवा के दबाव का परीक्षण हम स्वयं कर सकते हैं। कटोरे में पानी भरकर जब हम पिचकारी की नोक पानी में डालते हैं, और उसके दस्ते को अपनी ओर खींचते हैं, तो नोक और दस्ते के बीच का पिचकारी का अन्दरूनी भाग हवा से खाली हो जाता है। इस शून्य स्थान को भरने के लिये, पानी के सतह पर की हवा जोर मारती है, और पानी को लेकर अन्दर दाखिल होती है, क्योंकि बाहरी हवा का बोझ एक वर्ग-इञ्च स्थान पर लगभग आठ सेर का होता है।

अन्धे आदमी छूकर कैसे ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं ?

— ❀ —

हमारा स्पर्श-ज्ञान बड़ी ही महत्वपूर्ण चीज़ है। अन्धे आदमी के लिये स्पर्श-ज्ञान ही उनकी जानकारी का एक मुख्य साधन बन जाता है।

हमारे चमड़े के नीचे छोटे-छोटे अण्डाकार परमाणु होते हैं, जिन्हें स्पर्श-परमाणु कहते हैं। इनमें एक पतला स्नायु-तन्तु, प्रत्येक अणु के चारों ओर बँधा हुआ होता है। इन अणुओं की बनावट ऐसी होती है, कि चमड़े पर स्पर्श करते ही अन्दर के स्नायु-तन्तुओं पर बोझ पड़ता है, और इस प्रकार उसमें उत्तेजना फैलकर उसकी खबर मस्तिष्क को पहुँचती है।

शरीर के सभी भागों में चर्म समान-रूप से कोमल और स्पर्श-ज्ञान रखनेवाला नहीं होता। इस तथ्य का ज्ञान हम स्वयं प्रयोग करके जान सकते हैं।

उदाहरण के लिये, उँगलियों में अँगूठों की अपेक्षा अधिक स्पर्श-ज्ञान होता है। अपनी आँखें बन्द कर, हाथ आगे बढ़ाकर आप अपने किसी मित्र से कहें, कि

आपकी कोई उँगली छुए। आप विना देखे ही जान जाँयगे कि मित्र ने किस उँगली का स्पर्श किया है। अब यदि हम आँखे मूँदे हुए ही अपनी अनामिका और मध्यमा उँगलियों को एक-दूसरे के ऊपर-नीचे करके दोनों मे से किसी उँगली का स्पर्श मित्र से करायें, तो हमे पहली अवस्था की अपेक्षा यह जानने मे अधिक कठिनाई होगी, कि किस उँगली का स्पर्श किया गया है। किन्तु ध्यान रहे, कि प्रयोग के समय उँगलियों का स्पर्श केवल क्षण-मात्र करके उँगली हटाली जाती है।

अब हम कम्पास से अपने शरीर के भिन्न अंगों पर दिलचस्प परीक्षा कर सकते हैं। उँगलियों की नोक, होंठ, ज़बान, नाक, गर्दन के पीछे, हथेली और हाथ के पीछे कम्पास की दोनों भुजाएँ बिल्कुल पास रखकर भी यह ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं, कि दो विन्दुओं पर स्पर्श होरहा है।

इस प्रयोग से हम इस परिणाम पर पहुँचेंगे, कि ज़बान सब अङ्गों से अधिक स्पर्श-ज्ञान रखती है। यहाँ तक कि यदि कम्पास की दोनों भुजाओं मे $\frac{१}{२०}$ इञ्च का अन्तर रक्खा जाय, तोभी ज़बान पर दो भिन्न विन्दुओं पर स्पर्श-ज्ञान स्पष्ट रूप में होगा। उँगलियों की नोक पर दोनों भुजाओं का फ़ासला कम-से-कम $\frac{१}{१२}$ होने पर दो भिन्न विन्दुओं पर स्पर्श-ज्ञान हो सकता है। नीचे के होंठ

पर यह फासला $\frac{1}{6}$ इंच होना चाहिये, और नाक के सिरे पर $\frac{1}{4}$ इच। हाथ पर प्रयोग करने पर हमें मालूम हो जायगा, कि वह उपरोक्त अङ्गों की अपेक्षा कम स्पर्श-ज्ञान रखता है, क्योंकि हथेली पर कम्पास की दोनों भुजाएँ $\frac{1}{2}$ इच के फासले पर रखने पर ही से दो बिन्दुओं का ज्ञान हो सकता है, हथेली के पीछे यह फासला एक इच का होना जरूरी है, और गर्दन के पीछे तो यह फासला दो इच का होना आवश्यक है। शरीर के अन्य भागों पर भी प्रयोग करके हम स्पर्श-ज्ञान की शक्ति मालूम कर सकते हैं।

अब हम समझ सकते हैं, कि अन्धे लोग अपनी उँगलियों का प्रयोग अधिक क्यों करते हैं।

आपकी कोई उँगली छुए। आप बिना देखे ही जान जाँयगे कि मित्र ने किस उँगली का स्पर्श किया है। अब यदि हम आँखें मूँदे हुए ही अपनी अनामिका और मध्यमा उँगलियों को एक-दूसरे के ऊपर-नीचे करके दोनों मे से किसी उँगली का स्पर्श मित्र से करायें, तो हमे पहली अवस्था की अपेक्षा यह जानने मे अधिक कठिनाई होगी, कि किस उँगली का स्पर्श किया गया है। किन्तु ध्यान रहे, कि प्रयोग के समय उँगलियों का स्पर्श केवल क्षण-मात्र करके उँगली हटाली जाती है।

अब हम कम्पास से अपने शरीर के भिन्न अंगों पर दिलचस्प परीक्षा कर सकते हैं। उँगलियों की नोक, होंठ, ज़बान, नाक, गर्दन के पीछे, हथेली और हाथ के पीछे कम्पास की दोनों भुजाएँ बिल्कुल पास रखकर भी यह ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं, कि दो बिन्दुओं पर स्पर्श होरहा है।

इस प्रयोग से हम इस परिणाम पर पहुँचेंगे, कि ज़बान सब अङ्गों से अधिक स्पर्श-ज्ञान रखती है। यहाँ तक कि यदि कम्पास की दोनों भुजाओं मे $\frac{१}{२०}$ इञ्च का अन्तर रक्खा जाय, तोभी ज़बान पर दो भिन्न बिन्दुओं पर स्पर्श-ज्ञान स्पष्ट रूप में होगा। उँगलियों की नोक पर दोनों भुजाओं का फ़ासला कम-से-कम $\frac{१}{१२}$ होने पर दो भिन्न बिन्दुओं पर स्पर्श-ज्ञान हो सकता है। नीचे के होंठ

पर यह फ़ासला $\frac{१}{६}$ इंच होना चाहिये, और नाक के सिरे पर $\frac{१}{४}$ इंच। हाथ पर प्रयोग करने पर हमें मालूम हो जायगा, कि वह उपरोक्त अङ्गों की अपेक्षा कम स्पर्श-ज्ञान रखता है, क्योंकि हथेली पर कम्पास की दोनों भुजाएँ $\frac{१}{२}$ इंच के फ़ासले पर रखने पर ही से दो बिन्दुओं का ज्ञान हो सकता है, हथेली के पीछे यह फ़ासला एक इंच का होना जरूरी है, और गर्दन के पीछे तो यह फ़ासला दो इंच का होना आवश्यक है। शरीर के अन्य भागों पर भी प्रयोग करके हम स्पर्श-ज्ञान की शक्ति मालूम कर सकते हैं।

अब हम समझ सकते हैं, कि अन्धे लोग अपनी उँगलियों का प्रयोग अधिक क्यों करते हैं।

आपकी कोई उँगली छुए। आप विना देखे ही जान जाँयगे कि मित्र ने किस उँगली का स्पर्श किया है। अब यदि हम आँखें मूँदे हुए ही अपनी अनामिका और मध्यमा उँगलियों को एक-दूसरे के ऊपर-नीचे करके दोनों मे से किसी उँगली का स्पर्श मित्र से करायें, तो हमे पहली अवस्था की अपेक्षा यह जानने मे अधिक कठिनाई होगी, कि किस उँगली का स्पर्श किया गया है। किन्तु ध्यान रहे, कि प्रयोग के समय उँगलियों का स्पर्श केवल क्षण-मात्र करके उँगली हटाली जाती है।

अब हम कम्पास से अपने शरीर के भिन्न अंगों पर दिलचस्प परीक्षा कर सकते हैं। उँगलियों की नोक, होंठ, जबान, नाक, गर्दन के पीछे, हथेली और हाथ के पीछे कम्पास की दोनों भुजाएँ बिल्कुल पास रखकर भी यह ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं, कि दो विन्दुओं पर स्पर्श होरहा है।

इस प्रयोग से हम इस परिणाम पर पहुँचेंगे, कि जबान सब अङ्गों से अधिक स्पर्श-ज्ञान रखती है। यहाँ तक कि यदि कम्पास की दोनों भुजाओं मे $\frac{1}{20}$ इञ्च का अन्तर रक्खा जाय, तोभी जबान पर दो भिन्न विन्दुओं पर स्पर्श-ज्ञान स्पष्ट रूप में होगा। उँगलियों की नोक पर दोनों भुजाओं का फ़ासला कम-से-कम $\frac{1}{12}$ होने पर दो भिन्न विन्दुओं पर स्पर्श-ज्ञान हो सकता है। नीचे के होंठ

पर यह फ़ासला $\frac{1}{६}$ इंच होना चाहिये, और नाक के सिरे पर $\frac{1}{४}$ इंच। हाथ पर प्रयोग करने पर हमें मालूम हो जायगा, कि यह उपरोक्त अङ्गों की अपेक्षा कम स्पर्श-ज्ञान रखता है, क्योंकि हथेली पर कम्पास की दोनों भुजाएँ $\frac{1}{२}$ इंच के फ़ासले पर रखने पर ही से दो बिन्दुओं का ज्ञान हो सकता है, हथेली के पीछे यह फ़ासला एक इंच का होना जरूरी है, और गर्दन के पीछे तो यह फ़ासला दो इंच का होना आवश्यक है। शरीर के अन्य भागों पर भी प्रयोग करके हम स्पर्श-ज्ञान की शक्ति मालूम कर सकते हैं।

अब हम समझ सकते हैं, कि अन्धे लोग अपनी उँगलियों का प्रयोग अधिक क्यों करते हैं।

एक नई दुनियाँ

— ❀•❀ —

संसार मे कुछ ऐसे महान् काम भी होगये हैं, जिनके करनेवाले उस काम में शिक्षित नहीं हुए थे। कोलम्बस-नामक जिस आदमी ने विशाल समुद्रों को पार करके नई दुनियाँ (अमेरिका) का पता लगाया, वह कोई मल्लाह नहीं, बल्कि व्यापारी था। इसी प्रकार लन्दन में जो सेण्ट-पॉल का गिर्जाघर है, उसका निर्माता कोई राजगीर नहीं, बल्कि एक ज्योतिर्विद् प्रोफ़ेसर था। सर विलियम हार्शेल-नामक जिस यूरोपियन ने पहले एक ग्रह के सम्बन्ध में कुछ ज्ञातव्य बातों का पता लगाया था, वह एक संगीत-शिक्षित था।

आजकल विज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र मे इतने आविष्कार होने लगे हैं, कि खगोल-विद् यदि हमसे आज ग्रहों के विषय में कोई भी बात कहे, तो हम उसका विश्वास कर लेंगे। मार्च, सन् १९३० ई० मे, जब यह पता लगा था, कि सूर्य-मण्डल में नेपन्चून से बहुत दूरी पर एक नये ग्रह का पता लगा है, तो समाचारपत्रों-आदि ने इस सम्बन्ध में थोड़ी-बहुत दिलचस्पी ली थी।

वास्तव में खगोल विद् इस विषय में बहुत दिलचस्पी ले रहे थे, कि सूर्य-मण्डल के गिर्द का विस्तार, जिसमें सब से अधिक दूरी पर नेपच्यून ग्रह है, २,४००० लाख मील है। फिर भी उन्होंने यह अनुमान लगा लिया था, कि इस अत्यन्त विशाल मण्डल में नेपच्यून के अतिरिक्त और किसी ग्रह के होने की भी सम्भावना है, क्योंकि नेपच्यून के आविष्कार के पहले भी ऐसा ही अनुमान लगाया गया था, जिसके बाद वह दिखलायी पड़ा है।

अठारहवीं सदी के अन्त में जब हार्शेल ने यूरेनस का आविष्कार किया, तो उस समय यह समझा गया था, कि आकाश के सम्बन्ध में सभी आवश्यक और ज्ञातव्य विषय क्रियात्मक रूप में मालूम होगये हैं। बुध, शुक्र, मङ्गल, बृहस्पति और शनि ग्रह तो बहुत प्राचीन काल से। ही मालूम थे, और किसी को यह ख़याल नहीं था, कि ग्रहों की संख्या और होगी। ऐसी अवस्था में जब १३ मार्च, सन् १७८१ ई० की रात को विलियम हार्शेल ने अपने बनाये हुए नये दूरबीन से एक ऐसी विलक्षण चीज देखी, जिसे तारा नहीं कह सकते, तो उन्हें यह नहीं मालूम हो सका, कि वह चीज ग्रह हो सकती है। उन्हें इतना तो निश्चय होगया कि वह चीज तारा है, क्योंकि दूरबीन से उसका मण्डल स्पष्ट दीख पड़ा और तारे केवल प्रकाश-बिन्दु के रूप में दिखायी

ऐसी अवस्था मे उन्होंने उसे पुच्छल-तारा समझा, और उन्होंने 'रॉयल सोसाइटी'-नामक सस्था में इसका जो वृतान्त पेश किया, उसमें शीर्षक था—'एक पुच्छल तारे का वर्णन्' और उन्होंने लिखा था कि "१३ मार्च, मगलवार को रात के १० और ग्यारह बजे के वीच जब मैं 'जेमीनीरम'-नामक तारे के आस-पासवाले छोटे तारों का निरीक्षण कर रहा था, तो मुझे एक ऐसा मण्डल दिखायी दिया, जो औरों से बड़ा मालूम होता था। इसकी विशालता से आश्चर्यान्वित होकर मैंने जेमीनोरम तथा अन्य पाश्ववर्ती तारों से इसकी तुलना की, और इसे उन सब से बड़ा पाकर पुच्छल-तारा समझा।"

यद्यपि खगोलविद् ने लिखा था कि यह पुच्छल-तारा ग्रहों की भाँति घूमता है, फिर भी किसी को यह खयाल नहीं था, कि वह कोई ग्रह ही है। इसके ग्रह होने का प्रमाण एक रूसी खगोल-विशारद ने दिया, जो सेण्टपीटर्सबर्ग* का निवासी था।

हार्शेल ने आविष्कार के रूप में इसका नाम तत्कालीन सम्राट् जार्जतृतीय के नाम पर जार्जियम साइडस रक्खा। लोगों ने यह नाम पसन्द नहीं किया। एक फ्रांसीसी खगोल-विद् ने इसका नाम बदलकर आविष्कारक के नाम पर हार्शेल

---

* सेण्टपीटर्सबर्ग का वर्तमान नाम लेनिनग्रेड है।

रक्खा—किन्तु बाद में उसका नाम यूरेनस रक्खा गया, जिसका नाम प्राचीन गाथाओं में 'शनि का पिता' है।

इस आविष्कार से हार्शेल का जीवन बदल गया, क्योंकि उसी समय से उसने संगीत-शिक्षण का कार्य छोड़कर खगोल-विद्या में समय लगाना शुरू कर दिया, और सम्राट् जार्ज तृतीय का खगोल-विद् नियत होगया, और अल्प समय लगाने की जगह अपना सारा समय आकाश के अध्ययन में लगा दिया।

अपनी वृद्धावस्था में वह बाथ-नामक थियेटर में भाग लेता देखा जाता था। वह वहाँ बाजा बजाता, और अवकाश मिलते ही दूरबीन के पास दौड़ जाता था।

उसके बाद इस ग्रह के सम्बन्ध में अनेक बातें मालूम हुई हैं, किन्तु अब भी हम उसके सम्बन्ध में इतनी जानकारी नहीं प्राप्त कर सके हैं, जितनी मंगल, शुक्र, शनि और बृहस्पति के सम्बन्ध में रखते हैं।

यूरेनस सूर्य के गिर्द अण्डाकार पथ से घूमता है, और सूर्य इसकी पथ-सीमा से ८३० लाख मील के फ़ासले पर रहता है। सूर्य से इस ग्रह का मुख्य फ़ासला १,७८२० लाख मील है, और सूर्य के चारों ओर एक चक्कर लगाने में इसे ८४ वर्ष लग जाते हैं। इस प्रकार वहाँ का एक साल हमारे ८४ वर्षों के बराबर होता है। इस यात्रा में यूरेनस एक दिन में ३७२ मील की गति से घूमता है—यह चाल

बन-मानुस

बन-मानुस मनुष्य की आकृति का बन्दर होता है। इसका कद छः फीट ऊँचा होता है, और इसका शरीर ऐसा सुसगठित और मोटा-ताजा होता है, कि देखने पर यह बिल्कुल राक्षस जँचता है, और इसके अङ्गों तथा जबड़ों में इतनी अधिक ताक़त होती है, जिसका विश्वास नहीं किया जा सकता। एक बन-मानुस में औसतन पाँच आदमियों के बराबर बल होता है। कुछ ऐसे भी होते हैं, जिनकी ताक़त दस आदमियों की शक्ति से भी अधिक होती है।

जिस समय बन-मानुस पैदा होता है, उस समय उसका वजन मनुष्य के बच्चे के आधे वजन के बराबर होता है। जवान बन-मानुस-मादा का वजन दो आदमियों के बराबर होता है। एक बुड्ढा नर-बन-मानुस पूर्वी-काङ्गो में मारा गया था, उसका वजन दो टन (५४ मन) से भी अधिक था, और उसे उठाने के लिये दस आदमियों की जरूरत पड़ी थी।

शरीर के सब अगों—हाथ-पाँव-आदि को देखते हुए बन-मानुस मनुष्य से सब से अधिक मिलता हुआ प्राणी



वनमानुष (गोरिल्ला)

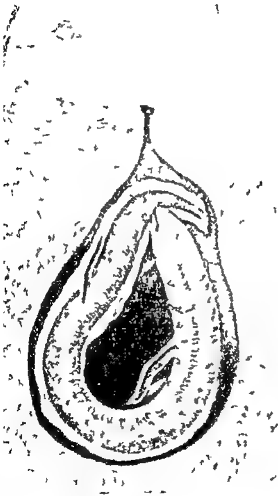
समझा जाता है, किन्तु इसका मस्तिष्क इतना छोटा होता है, कि यह चार वर्ष के बच्चे की उम्र से बड़ा नहीं होता। इसके शरीर पर सीधे और सख्त बालों का समूह होता है, जिनका रंग काला और काला-लाल होता है। उनके नीचे कुछ मुलायम रङ्ग के रोये भी होते हैं। बुढापे में यह बाल भूरे अथवा सफेद हो जाते हैं। सिर पर लालिमा-युत रङ्ग के बाल होते हैं। इसकी सूरत भयानक होती है। उसका उभडा हुआ मुँह, चपटी नाक और आँखें बेढङ्गी होती हैं। जब यह अपना मुँह खोलता है, तो इसके भयानक दाँत दिखायी देते हैं।

वन-मानुस वास्तव में एक दिलचस्प जानवर है, किन्तु धीरे-धीरे इसकी संख्या घटती जारही है। सर आर्थर कीथ का कहना है कि संसार-भर में ५०,००० वन-मानुस भी नहीं हैं। यह प्रायः अफ्रीका के जङ्गलों में पाया जाता है, और खासकर यह पहाडीवाले जङ्गलों में। कभी-कभी यह नीचे सुनसान और उजाड गाँवों में भी देखने में आता है। कभी-कभी इनका झुण्ड गाँवों की तरफ आता है, तो केलों और गन्नों-आदि को बड़ा नुक-सान पहुँचता है।

वन-मानुस समुद्र की सतह से १०,००० फीट ऊँचाई तक के पहाड़ों पर रह सकता है, और वे—नर-मादा—दस-दस तक की संख्या में, परिवार के रूप में देखे जाते हैं।

मछलियों का शयन-गृह

अफ्रीका, अमरीका और दक्षिणी ऑस्ट्रेलिया में ऐसी मछलियाँ पायी जाती हैं, जिन्हें गर्मियों-भर सोने की आदत होती है। जिस समय गर्मी पड़ने के कारण जलाशय सूखने लगते हैं, तो ये मछलियाँ नीचे कीचड़ में बैठ जाती हैं, और वहाँ ऐसे घर बना लेती हैं, जिनमें घुसकर वे सोया करती हैं। क्रमशः जब नदी, झील या तालाब सूख जाते हैं, तो मछलियाँ अपने सूखे मकान में रह जाती हैं। कभी-कभी इस सख्त कीचड़ों के खोदे जाने पर उनमें से जीवित मछलियाँ अचेतावस्था में पायी गयी हैं। पानी पड़ते ही ये मछलियाँ फिर सजीव हो उठती हैं।



मछली का शयन गृह

मछलियों का शयन-गृह



अफ्रीका, अमरीका और दक्षिणी ऑस्ट्रेलिया में ऐसी मछलियाँ पायी जाती हैं, जिन्हें गर्मियों-भर सोने की आदत होती है। जिस समय गर्मी पड़ने के कारण जलाशय सूखने लगते हैं, तो ये मछलियाँ नीचे कीचड़ में बैठ जाती हैं, और वहाँ ऐसे घर बना लेती हैं, जिनमें घुसकर वे सोया करती है। क्रमशः जब नदी, झील या तालाब सूख जाते हैं, तो मछलियाँ अपने सूखे मकान में रह जाती हैं। कभी-कभी इस सख्त कीचड़ों के खोदे जाने पर उनमें से जीवित मछलियाँ अचेतावस्था में पायी गयी हैं। पानी पड़ते ही ये मछलियाँ फिर सजीव हो उठती हैं।



जंगलों का महत्त्व

—ꕥ०ꕥ—

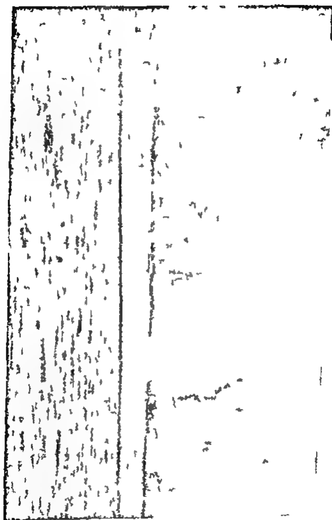
जङ्गलों के बिना आदमी का काम नहीं चल सकता। उनसे न-केवल हमें लकड़ी, शराब, तैल, गोंद और गल मिलती है, बल्कि तरह-तरह के कागज और सुन्दर बनावटी रेशम भी जङ्गली पदार्थों से बनकर तैयार होते हैं।

जिस जगह के जङ्गल काट दिये जाते हैं, वहाँ न-केवल इन चीजों की आमदनी बन्द होजाती है, बल्कि वहाँ का जल-वायु भी बदल जाता है। वहाँ बारिश बहुत कम होने लगती है, और अन्त में उस जगह रेगिस्तान बन जाता है। आज जितने रेगिस्तान देखने में आते हैं, वहाँ किसी जमाने में घने जङ्गल थे। इसका कारण यह है, कि वृक्षों में मौनसून को आकर्षण करने की शक्ति होती है, जिससे वृष्टि खूब होती है। जङ्गलों से बारिश के पानी का उपयोग भी खूब होता है। इससे न-केवल वृक्षों में वृद्धि और वायु में शुद्धता आती है, बल्कि इसके कारण तरह-तरह की जड़ी-बूटियाँ पैदा होती हैं, जो मनुष्य-जाति के स्वास्थ्य के लिये अत्यावश्यक हैं।

जिन पहाड़ियों के ढलाव पर खूब घने वृक्ष होते हैं, वहाँ पानी रुककर चश्मे-आदि के रूप में निकलता है, और

तो ये जन्तु बड़े ही खतरनाक समझे जाते थे, और इनके
सम्बन्ध में तरह-तरह की कहानियाँ प्रचलित थीं, कि ये
जहाजों को अपने लम्बे पाँवों से पकड़कर रोक लेते हैं।
किन्तु इस प्रकार की कहानियों में अतिशयोक्ति से काम
किया गया है, क्योंकि जहाज पकड़ लेना या मस्तूल तोड़
देना इस जानवर के वस के बाहर की बात मालूम होती है।

इस जानवर के सम्बन्ध में अब कई आश्चर्यजनक बातें
मालूम हुई हैं, जिनमें से एक यह है, कि उसके शरीर में से
कस्तूरी की-सी सुगन्धि निकलती है। अपनी लम्बी बाँहों
से यह कई आदमियों को एक-साथ पकड़ सकता है, और
अपना तोते की चोंच-जैसा मुँह खोलकर निगल-जा सकता
है। इसका हाज्मा बहुत प्रबल होता है।



रेत के पहाड

रेत के पहाड़

— ☼ —

जिन लोगों ने हिन्दुस्तान में राजपूताने का या अफ्रीका में सहरा का रेगिस्तान अपनी आँखों नहीं देखा है, उन्हें इस बात का समुचित ज्ञान कठिनाई से हो सकता है, कि रेगिस्तान वास्तव में होता कैसा है। साधारणत लोगों का यही ख़याल है, कि रेगिस्तान में जहाँ तक लोगों की नजर जाती है, रेत का समतल धरातल नजर आता होगा। किन्तु वास्तव में बात यह नहीं है—रेगिस्तान में पहाड़ियाँ और घाटियाँ भी होती हैं, और अफ्रीका के रेगिस्तान में सब से बड़े आश्चर्य की बात तो यह है, कि ये पहाड़ियाँ चलती-फिरती हैं।

यदि हम सहरा का रेगिस्तान एक बार देखने के साल-भर बाद फिर जाँय, तो वह हमें बिल्कुल परिवर्तित अवस्था में दीखेगा। यह बात वास्तव में रहस्यपूर्ण मालूम हो सकती है, किन्तु तथ्य यह है, कि ये चलती-फिरती पहाड़ियाँ, पत्थर की नहीं, वरन् रेत की बनी होती हैं, और वे हवा के तेज झोंकों से एक जगह से दूसरी जगह और दूसरी से तीसरी जगह सरकती फिरती हैं।

यह स्मरण रखने की बात है कि ससार के सभी बड़े-बड़े रेगिस्तान, जिनमे से सहरा, गोबी और अरब के रेगिस्तान विशेष प्रसिद्ध हैं, आँधी के कारण बने हैं। शताब्दियों से हवा के तेज झोंके समुद्र के किनारे की रेत को उड़ा-उड़ाकर दूर तक लेजाते रहे हैं, और होते-होते बहुत दूर तक रेगिस्तान फैल गया है। कभी-कभी रेत की इन आँधियों से जगल, नगर, सड़कें और नदियाँ तक ढक गयी हैं। रेत की इन भयानक आँधियों से बड़े-बड़े सुसभ्य नगर, जहाँ की सभ्यता और कला दूर-दूर तक प्रसिद्ध थी, रेत की लहरों के नीचे दब गये हैं, और अब वहाँ अतुल वालुका-राशि के अतिरिक्त और कोई भी चीज देखने में नहीं आती।

खासकर गोबी के रेगिस्तान का यही हाल है। कोई दो हजार वर्ष पहले इस रेगिस्तान की जगह बड़े-बड़े नगर आबाद थे, और वहाँ बहुत-सी नदियाँ और झीलें थीं। यहाँ के नगरों मे सुन्दर-सुन्दर मन्दिर और महल बने थे, और यहाँ खूब व्यापर चलता था। किन्तु आज वह सारी शान सचमुच धूल मे मिल गयी। वे सुन्दर नगर अब इस रेगिस्तान के खोदने पर सैकड़ों फ़ीट नीचे गडे मिलते हैं। हवा के झोंकों ने उन पर अरबों मन

उनका अस्तित्व मिटा दिया।

जंगल सन जमीन के गर्भ में

करके और वहुत-से प्रचुर मनुष्यों की सहायता से थोड़ी-सी जगह पर जमीन खोदकर पता लगाया जा सकता है कि किसी समय वह जगह कैसी समृद्धिशाली थी।

रेत के तूफान के समय एक मील के छ-महल घन में लाखों मन रेत और वालुका छाजाती है। उत्तरी अफ्रीका में भी यही हाल होता है, जहाँ सहारा के रेगिस्तान से बालू के ढेर उड़-उड़कर खेतों और मकानों को ढक लेते हैं। इन रेतीले तूफानों के कारण कितने ही क़ाफिले नष्ट हो-गये। ये तूफान केवल अफ्रीका और एशियाई देशों में ही नहीं उठते, वरन् अमेरिका और ग्रेट-ब्रिटेन के सूखे प्रदेशों में भी ये प्राय देखने में आते हैं।

अमेरिका के कुछ हिस्सों में तूफान के कारण रेल की पटरियाँ एक-ही-दो दिन में रेत में दब जाती हैं। कहीं-कहीं पेड़ भी रेत में दब जाते हैं।

रेगिस्तान में हम जिस रेत के टीले को आज देखते हैं, एक ही सप्ताह बाद वह वहाँ से गायब हो-जा सकता है, और दूसरे ही सप्ताह दूसरी जगह नया टीला नजर आसकता है—यह सब आँधी के रुख और जोर पर निर्भर है।

मध्य-एशिया में प्राय वायु-मण्डल में इतने छोटे-छोटे रेत-कण भरे होते हैं कि ठीक दोपहर को भी सूर्यदेव के दर्शन नहीं होपाते।

कहीं गर्मी और कहीं सर्दी क्यों पड़ती है।

— ❀०❀ —

दुनियाँ में जितने प्रसिद्ध नगर हैं, उनके सम्बन्ध में हम जानते हैं कि कहीं तो गर्मी अधिक पड़ती है, कहीं सर्दी। ऐसा क्यों होता है? इसका एक-मात्र कारण सूर्य है, क्योंकि सूर्य के कारण ही पृथ्वी पर गर्मी पड़ती है। चूँकि पृथ्वी चपटी न होकर गोल है, और वह सूर्य के गिर्द घूमती रहती है, इसलिये उसके किसी हिस्से पर सूर्य की किरणें सीधी पड़ती हैं, और किसी पर तिर्छी। जिन हिस्सों पर सूर्य की किरणे सीधी पड़ती हैं, वे गर्म, और जिन पर तिर्छी पड़ती हैं, वे सर्द होते हैं। चूँकि सिंगापुर, मद्रास और कलकत्ते मे ये किरणे सीधी पड़ती हैं, अत ये जगहे गर्म हैं, और लण्डन, एडिनबरा तथा लेनिनग्रेड (रूस) में ये किरणें तिरछी पड़ती हैं, इसलिये ये जगहें बड़ी ठण्डी हैं। यदि पृथ्वी गोल न होकर चपटी होती, तो यह सर्दी-गर्मी की विषमता नही हो सकती थी, और सब शहर एक-से ठण्डे और गर्म होते, किन्तु बात इसके विपरीत है।

शहरों की बात छोड़कर भी हम विचार करें, तो

मालूम होगा कि जो प्रदेश भूमध्य-रेखा के निकटवर्ती होंगे, वे सूर्य की किरणे सीधी पडने के कारण गर्म देश होंगे, और जो उनसे दूर होंगे, उन पर सूर्य की किरणें तिर्छी पडने के कारण ठण्डे होंगे। जो देश भूमध्य-रेखा से जितनी ही दूरी पर होगा, वह उतना ही ठण्डा होगा।

नमाज़ी चिड़िया

— ❀ —

साधारणत जितनी चिडियाँ हमारे देखने मे आती हैं, उनमें नमाजी चिडिया सब से विलक्षण होती है। इसकी शक्ल देखकर यकायक इसे चिडिया नहीं कहा जा सकता। मालूम होता है, कि कोई बुड्ढा आदमी बडे शान्त-भाव से खडा है, या कोई नमाजी नमाज पढ रहा है।

यह चिडिया खुश्की की नहीं, जल की है। समुद्र में यह बडे सुख से रहती हैं। जमीन पर आकर यह चिडिया सुस्त-सी दीखती है, किन्तु पानी मे पडते ही इसकी स्फूर्ति देखने लायक होजाती है। यह मछली बहुत खाती है, बहुत तेज तैरती है, और तैरते समय इसे अपने पाँवों का उपयोग नहीं करना पडता। इसके पर ही इस किस्म के बने होते हैं, जिनसे उसे तैरने मे बडी सुविधा होती है। जितनी तेजी से अन्य पक्षी हवा में उडते हैं, उतनी ही तेजी से यह पानी मे तैर सकती है। लहरों के साथ इन चिडियों के झुण्ड तैरने में कभी कभी जहाजों से आगे निकल-जाते देखे गये हैं।

किश्तीनुमा शक्ल

इस चिडिया की शक्ल किश्ती या नाव-जैसी होती है। इसके परों में रोये नहीं होते—यह मछली के परों से मिलते-जुलते हैं।



नमाज़ी चिड़िया

रेत का गाना

— ꙮ —

ईसा की तेरहवीं शताब्दी में मरु-स्थल के यात्रियों ने यह मालूम किया था कि जिस समय हम रेतीले मैदान में होकर सफर करते हैं, तो रेत से एक प्रकार का गाने का गूँजने का-सा स्वर निकलता है। मर्कोपोलो-नामक एक यूरोपियन यात्री ने गोबी मरु-स्थल में भ्रमण करने के बाद लिखा था कि कभी-कभी वाद्य-यन्त्र (बाजे) की-सी आवाज आती है, और साधारणत ढोल कैसे बजने की-सी आवाज भी आती है।

बहुत दिन तक यात्रियों मे इस आवाज की चर्चा अनेक प्रकार से होती रही, किन्तु सर ऑरिलस्टीन ने बीसवीं सदी मे सफर करने के बाद लिखा है, कि हमने ठीक तौर पर वह आवाज सुनी है, जो दूर से गाडी के चलने की-सी आवाज के रूप में निकलती है।

अद्भुत आवाज

किन्तु रेत का यह बाजा केवल गोबी के ही मरु-स्थल तक सीमित नहीं है। कितने ही अँग्रेज-यात्रियों ने फारस मे सफर करते समय रेतीले मैदान के नीचे से ऐसी-ही आवाज निकलती सुनी है, और एक ने तो उस आवाज

यह पक्षी भूमध्य-रेखा से एटलाण्टिक की ओर पाया जाता है, और दक्षिणी ध्रुव के बर्फीले स्थानों पर भी विशेष रूप में मिलता है। फॉकलैण्ड के द्वीपों, कर्गलेन और न्यूजीलैण्ड के पार्श्ववर्ती द्वीपों में भी यह चिड़िया विशेषरूप मे पायी जाती है।

जातीय भावना

इस चिड़िया में जातीय भावना बहुत होती है, और यह प्रशान्त-महासागर के उत्तरी द्वीपों मे तीस से चालीस हजार तक की सख्या मे एक जगह पर एकत्रित देखो गयी हैं। यह फौजी सिपाहियों की तरह कतार बाँधकर खडी होती हैं—और आश्चर्य की बात तो यह है, कि बच्चों को यह अलग विभक्त करके खडा करती हैं, मादा को अलग, साफ और तकडे नर-पक्षियों को अलग, तथा पर झाडनेवाले, गन्दे और कमजोर पक्षियों को अलग।

नमाजी चिडिया कोई घोंसला नही बनाती। हाँ, फॉकलैण्ड-द्वीप में रहनेवाले इस जाति के पक्षी जमीन के गड्ढों में घास के तिनके बिछाकर घर-सा बना लेते हैं। इसके अण्डे सख्या में दो, हरे-से रङ्ग के, और बत्तख के अण्डों के आकार के होते हैं। इनके सेने मे नर और मादा दोनों ही हिस्सा बटाते हैं।

देखा कि बालू का समूह ऊँचाई से ढलकने के कारण वही आवाज फिर पैदा हुई। हर बार उस पर चलने पर लगभग दो मिनट तक वैसी ही सुरीली आवाज निकलती थी। एक बार मैं चलते-चलते बैठ गया, तो देखता हूँ कि ऊपर की रेत फिसलकर मेरे नीचे से गुजर रही है। जब मैंने अपना हाथ अन्दर घुसेड़कर उसे निकाला, तो ऐसा मालूम हुआ कि उसमें से एक लम्बी शोकजनक (आहपूर्ण) ध्वनि निकल पड़ी।"

फ़िलबी साहब का विश्वास है कि यह आवाज उस शून्य स्थान के बन जाने के कारण होती है, जो ऊपर की हिलती रेत और नीचे की स्थिर बालुका के बीच में होता है।

सिनाई में रेत का एक ऐसा टीला है, जिसका नाम ही 'घण्टे का टीला' पड़ गया है, क्योंकि जब उस पर होकर कोई चलता है, तो घण्टे की-सी आवाज निकलती है, और जो घण्टे ही की आवाज की तरह धीरे-धीरे कम होते-होते गायब होती है। ऐसा समझा जाता है, कि रेत के असंख्य कणों पर चलते समय उनके पारस्परिक संघर्षण यह आवाज पैदा होती है।

एक और यात्री का कहना है कि रेत के दानों की रगड़ से पहले गूँजने की-सी ध्वनि होती है, फिर वही आवाज सघन होकर बादल के गर्जने के रूप में परिवर्तित हो जाती है।

की उपमा करुण-स्वर मे बजनेवाली बीन से दे डाली है, और दूसरे ने उसे अनेक तारों (टेलीग्राफ्स) के प्रकम्पन की घनी आवाज से मिलती-जुलती बताया है। कहा जाता है, कि यह आवाज प्राय घण्टों तक सुनायी देती रहती है, और स्थिर मौसिम में दस मील की दूरी तक सुनायी देती है।

सेण्ट जॉन फिलवी-नामक एक यात्री ने १९३२ ई० मे अरब के रेगिस्तान मे सफर करते हुए यह आवाज सुनी थी, किन्तु अरब के मूल-निवासी उस आवाज को भूत या शैतान की आवाज बतलाते हैं।

उन्होंने अपने यात्रा-विवरण मे इसकी चर्चा इस प्रकार की है—

"एक दिन दोपहर के बाद जब खूब गर्मी पड रही थी, और मैं अपने खेमे मे विश्राम कर रहा था, कि सहसा मैंने एक आश्चर्यजनक झंकार की आवाज सुनी, जो बहुत ऊँची और सुरीली थी। वह आवाज लगभग दो मिनट तक ठहरी। ऐसा मालूम हुआ—मानों बहुत-सी गायिकाओं का सयुक्त स्वर एक साथ सुनाई दे रहा हो।

"मैं अपने खेमे से यह देखने के लिये बाहर निकला कि मामला क्या है,—तो क्या देखता हूँ कि मेरे आदमियों में से एक के खूब भुरभुरी रेत के ढलुआँ टीले पर चढने के कारण यह आवाज हुई है। मैंने खुद उस टीले पर चढकर

देखा कि यालू का समूह ऊँचाई से ढलकने के कारण वही आवाज फिर पैदा हुई। हर बार उस पर चलने पर लगभग दो मिनट तक वैसी ही सुरीली आवाज निकलती थी। एक बार मैं चलते-चलते बैठ गया, तो देखता हूँ कि ऊपर की रेत फिसलकर मेरे नीचे से गुजर रही है। जब मैंने अपना हाथ अन्दर घुसेडकर उसे निकाला, तो ऐसा मालूम हुआ कि उसमें से एक लम्बी शोकजनक (आहपूर्ण) ध्वनि निकल पडी।"

फिलवी साहब का विश्वास है कि यह आवाज उस शून्य स्थान के बन जाने के कारण होती है, जो ऊपर की हिलती रेत और नीचे की स्थिर वालुका के बीच मे होता है।

सिनाई मे रेत का एक ऐसा टीला है, जिसका नाम ही 'घण्टे का टीला' पड गया है, क्योंकि जब उस पर होकर कोई चलता है, तो घण्टे की-सी आवाज निकलती है, और जो घण्टे ही की आवाज की तरह धीरे-धीरे कम होते-होते गायब होती है। ऐसा समझा जाता है, कि रेत के असख्य कणों पर चलते समय उनके पारस्परिक सघर्षण यह आवाज पैदा होती है।

एक और यात्री का कहना है कि रेत के दानों की रगड से पहले गूँजने की-सी ध्वनि होती है, फिर वही आवाज सघन होकर बादल के गर्जने के रूप मे परिवर्तित हो जाती है।

इस प्रकार की आवाजें ससार के विभिन्न भागों में विभिन्न प्रकार की होती हैं। हवाई द्वीप में रेत की आवाज कुत्ते के भौंकने के रूप में सुनाई देती है। ईग और हिब्राइड्स-नामक द्वीपों में सरोद के बाजे की-सी आवाज निकलती है। यूरोप और अमेरिका के समुद्र-तटों पर भी अनेक जगह ऐसी आवाजें सुनने में आयी हैं, किन्तु समुद्र-तट की भीगी रेत से निकली हुई आवाज मरु-स्थल की आवाज से भिन्न होती है। इस आवाज निकलने के दो सिद्धान्त बताये जाते हैं—एक तो निचली स्तर की अपेक्षाकृत गीले रेत के दानों और शुष्क रेत के दानों का सघर्ष—दूसरा—यह कि एक बारीक स्तर मे वायु भरी रहती है, जो रेत के दबाव से प्रकम्पित होकर बाहर निकलती है—और परिणाम-स्वरूप इस प्रकार आवाज सुनाई देती है।

जहाँ कहीं रेत पर आवाज होती है, लोग वहाँ खड़े होकर एक प्रकार के प्रकम्पन का अनुभव करते हैं। यात्रियों का कहना है, कि उनके पञ्जों के नीचे सनसनाहट-सी होती है, और कभी-कभी वे इस प्रकम्पन के द्वारा हिल उठते हैं।

रेत का प्रकम्पन

लेफ्टिनेण्ट न्यूबोल्ड-नामक यात्री का कहना है, कि घण्टेवाली पहाडी पर पहले सरसराहट की हल्की आवाज

सुनाई देती है, फिर एक धीमी, गहरी और दूर बजते हुए बाजे की-सी आवाज आती है। अन्त में यह आवाज़ गिरजाघर के घण्टे या तारवाले बाजे की तरह प्रकम्पन-पूर्ण ध्वनि के रूप में परिवर्तित होजाती है।

रेत पर बार-बार चलने से आवाज देर तक स्थायी रहती है, जो जोर-जोर से सरोद बजाने की आवाज से मिलती है। पर क्रमशः यह आवाज़ ऊँची होकर बादल की गरज के रूप में बदल जाती है। लेफ्टिनेण्ट ने यह भी लिखा है, कि बैठ जाने पर रेत पर स्पष्ट प्रकम्पन का अनुभव होता है।

"उस प्रकम्पन की अनुभूति," वे लिखते हैं—"असाधारण होती है। इसकी तुलना तारवाले बाजों के उस समूह पर बैठने से की जा सकती है, जिस पर धीरे-धीरे कमान फेरी जा रही हो। यह प्रकम्पन पाव घण्टे तक जारी रहता है, और तब रेत शान्त होजाती है।"

इसमें आश्चर्य नहीं, कि जिन जगहों में रेत से ऐसी आवाजें निकलती हैं, वहाँ के मूल-निवासी उसका कारण न समझ, उसे एक अस्वाभाविक क्रिया समझते हैं।

किसी चीज़ का स्वाद कैसे मालूम होता है ?

— ०※० —

जिस प्रकार हम अपनी आँखों से देखते और कानों से सुनते हैं, उसी प्रकार हम अपनी जिह्वा या जबान और तालू के पिछले भाग से सब चीजों का स्वाद लेते हैं। स्वाद लेने का असली साधन एक झिल्ली या गीली रेखा है, जो जबान और तालू के पिछले भाग को ढके रहती है। इस झिल्ली पर छोटे-छोटे अणु होते हैं। ये अणु बराबर के न होकर छोटे-बड़े होते हैं, और जबान के पीछे इनमें बारीक छिद्र-से होते हैं। इसकी बनावट रुईदार गद्दे की शक्ल में होती है। इस रुई के नीचे एक नाली-सी होती है, जिनमें से होकर राल भोजन में मिलती है, जिससे पाचन-क्रिया में मदद मिलती है। इस नाली के बगल में 'स्वाद-कलिकाएँ' होती हैं। ये स्वाद-कलिकाएँ जबान के और हिस्सों में भी पायी जाती हैं, यद्यपि और जगह यह संख्या मे कम होती हैं।

स्वाद का रहस्य

ये स्वाद-कलिकाएँ डोंगी-नुमा परमाणुओं से बनी होती हैं, जो नारंगी की फाँक से मिलते हैं। यह परमाणु

पवान के ऊपरवाले बालनुमा छिद्रों से मिले होते हैं।

जो खाना हम खाते हैं, वह दाँतों-द्वारा विदीर्ण होकर मुँह के भीतरी भाग में जाता है, और जाते समय इसका कुछ भाग उपर्युक्त नाली मे भी पड जाता है, जहाँ वह कुल मिल जाता है। बालनुमा छिद्रवाली स्वाद-कलिकाएँ इस रस के सयोग में आते ही इसका स्वाद स्वाद-स्नायु के द्वारा मस्तिष्क मे पहुँचाती हैं।

हिन्दू-विज्ञान के अनुसार स्वाद छ प्रकार का माना गया है—मीठा, खट्टा, कडुवा, चरपरा, नमकीन, और कसैला। किन्तु पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने अधिकतर चार-ही रस—मीठा, खट्टा, नमकीन और कडुवा माना है। अस्तु, हम उदाहरण के तौर पर चार-ही पदार्थ लेते हैं—चीनी, सिरका, नमक और कुनैन। इन्हीं चार चीजों के सम्मिश्रण से हमारे दैनिक व्यवहार के खाद्य-पदार्थ तैयार होते हैं, किसी चीज में ये अधिक परिमाण मे डाली जाती हैं, किसी मे कम। मीठे पदार्थ को तीक्ष्ण बनाने के लिये उसमें कुछ नमकीनपन की जरूरत होती है। डबल रोटियों और मुरब्बों-आदि में भी थोडा नमक डालना स्वाद को बढाने के लिये प्रयुक्त होता है। इसी प्रकार पेय पदार्थों में भी सम्मिश्रण होता है। लेमन (नीबू-रस) में मीठे और श्राम का सम्मिश्रण करने पर बडा अच्छा स्वाद बन जाता है।

स्वाद की क्रिया अधिकाश में हमारी आदतों पर निर्भर है। उदाहरण के लिये धूम्र-पान करनेवाले खट्टी चीज को धूम्र-पान न करनेवालों की अपेक्षा अधिक वर्दाश्त कर सकते हैं। पर व्यक्तिगत रूप मे देखने पर यही सिद्ध होगा कि जन्म से ही मनुष्य की भिन्न इन्द्रियानुभूति के समान विभिन्न रुचि होती है। बच्चों में तरुणों की अपेक्षा स्वाद की अनुभूति तीव्र होती है, क्योंकि उनकी जबान अधिक मसालेदार और उग्र स्वाद की चीजों से नष्ट नहीं होगई रहती।

जब हम ऐसे पदार्थ खाते या पीते हैं, जिनमे एक से अधिक रस मिले होते हैं, तो हमें उन सभी रसों का स्वाद मिलता है। जबान का सारा भाग चारों स्वादों का समान-रूप से स्वाद नही ले सकता। जबान का पीछे का हिस्सा कड़वे रस का अनुभव विशेष रूप में करता है, और उसकी नोक मीठे रस की अनुभूति बहुत शीघ्रतापूर्वक करती है। इसी प्रकार जबान के किनारेवाले हिस्से खट्टे या क्षार-रस का अनुभव बहुत अधिक करते हैं, किन्तु जबान के नीचे के हिस्से मे स्वाद लेने की यह शक्ति समान रूप-से नहीं होती। उदाहरण के लिये यदि हम कुनैन और चीनी का रस पीलें, तो उसके दो हिस्सों मे दोनों की अनुभूति पृथक्-पृथक् होगी।

सुगन्धि से स्वाद-शक्ति को मदद मिलती है।

बार-बार तीक्ष्ण स्वादयुक्त चीजों का सेवन करते रहने से स्वादेन्द्रिय कुण्ठित हो जाती है। स्वादेन्द्रिय पर घ्राणेन्द्रिय का बहुत असर पड़ता है, और प्राय एक के कारण दूसरे को धोखा हो जाता है। हम जब कस्तूरी का स्वाद लेने के लिये तैयार होते हैं, तो स्वादेन्द्रिय के बजाय घ्राणेन्द्रिय काम करती है। आँखे भी स्वाद लेने मे मदद देती हैं, क्योंकि यदि किसी की आँख बन्द करके उसे लाल या सफेद शराब पिला दी जाय, तो उसे यकायक यह बताना कठिन होजायगा, कि वह कौन-सी शराब पी रहा है।

गर्मी या सर्दी अत्यधिक पड़ने के कारण भी कुछ समय के लिये स्वाद-शक्ति मारी-सी जाती है। वास्तव मे स्वाद पूरी तरह उसी समय लिया जा सकता है, जब शीतोष्ण दशा ५० से ९५ फॉनहाइट के बीच मे हो। हम जानते हैं कि जब हम कोई अत्यधिक गर्म चीज गलती से अपने मुँह मे डाल लेते हैं, तो हमारी स्वाद-शक्ति जाती रहती है, और जब हम अपनी जबान पर बर्फ का टुकड़ा रखते हैं, तो भी जबान में स्वाद लेने की शक्ति तब तक नहीं रहती, जब तक वह फिर गर्म नहीं हो जाती।

यदि हमारी जबान सूखी हुई हो, तो हम किसी भी चीज का स्वाद नहीं ले सकते। इसका कारण यह है कि

स्वाद लेनेवाले अवयवों को उत्तेजित करने के लिए किसी तरल पदार्थ की आवश्यकता होती है। यदि हमारी जबान खूब शुष्क हो रही हो, और हम उस पर कोई चूर्ण रक्खे, तो जब तक कि मुँह का तरल पदार्थ उसके कणों को गीला न कर लेगा, हम स्वाद नही पा सकेंगे।

रक्त-प्रवाह का रहस्य

—०°०—

वैज्ञानिकों ने सदियों से रक्त के सम्बन्ध में अध्ययन किया है, और इसके सम्बन्ध में बहुत-सी बाते मालूम की हैं, किन्तु वास्तव मे अब भी हमें रक्त के सम्बन्ध में बहुत-कुछ ज्ञान प्राप्त करना है, और बहुत सी बातें ऐसी हैं, जिनकी व्याख्या अच्छी तरह नहीं हो सकी है।

हमारे शरीर में रक्त बहुत बडा काम करता है। यह हमारे आहार के रस को, जो हमारे पाचक अवयवों की क्रिया के बाद तैयार होता है, शरीर के विभिन्न अङ्गों में ले जाता है। यह उस प्राण-प्रद वायु को भी विभिन्न अङ्गों से सचालित करता है, जो हमारे साँस लेने से फेफड़े में भरता रहता है, और यह उन अङ्गों से बहुत-से व्यर्थ पदार्थ निकालता रहता है, जिनका उनमें रहना वाञ्छनीय नहीं होता। यह शरीर के विभिन्न अवयवों और गलीय अशों के तापक्रम को समान रखने का कार्य भी करता है। सब क्रियाओं से स्पष्ट होजाता है, कि रक्त हमारे शरीर का कितना महत्वपूर्ण अग है।

आखिर यह आश्चर्यजनक तरल पदार्थ है क्या चीज, जिस पर हमारे शरीर का इतना दारोमदार है? इसका

परीक्षण करने पर मालूम होता है, कि इसमें अनेक पदार्थ सम्मिलित हैं। उदाहरण के लिये रक्त में एक तरल अंश 'लासया'-नामक पदार्थ का होता है, जिसमें कोई रँग नहीं होता। यद्यपि हम जानते है, कि यदि हमारी उँगली चिर जाय, तो उसमे से लाल रक्त निकलेगा। यह रक्त कभी तो चमकीला लाल होता है, और कभी गहरा लाल। जब यह शुद्ध होता है, और (Artery) से आता है, तो चमकीला लाल होता है, और जब अशुद्ध होता है, और रगों से निकलता है, तो गहरा लाल होता है।

पर यदि रक्त का तरल अंश रंगहीन होता है, तो इसमें लाल रँग कहाँ से आता है? वास्तव में 'लासया' में बहुत छोटे-छोटे गोलाकार पदार्थ तैरते हैं, जिन्हें लाल परमाणु (red corpuscles) कहते हैं। ये वास्तव में लाल नहीं, बल्कि गहरे पीले रँग के होते हैं। जब ये अधिक संख्या में इकट्ठे देखे जाते हैं, तो लाल प्रतीत होते हैं। यह चीज़ इतनी छोटी होती है, कि उसका व्यास एक इंच का ३२०० अंश होता है, और मोटाई इसका भी तृतीयांश।

हमारे शरीर में जितना वजन होता है, लगभग उसका आधा अंश लाल परमाणुओं का होता है। इससे समझा जा सकता है, कि हमारे शरीर में इन लाल परमाणुओं की संख्या कितनी अधिक है। वास्तव में हमारे शरीर के प्रत्येक घन इंच में ८२ अरब लाल परमाणु होते हैं, और एक पूर्ण

स्वस्थ आदमी के शरीर में २५ करोड लाल की संख्या तक पाये जाते हैं।

एक आश्चर्यजनक तथ्य

वास्तव में यही छोटे कण, प्राण-प्रद वायु को फेफडे में से जज्ब करता है, और चूँकि हमें प्राणप्रद वायु की अत्यधिक आवश्यकता होती है, इसलिये शरीर में लाल परमाणुओं का क्षेत्रफल लगभग २५,००० वर्ग-फीट होता है।

यदि हम ऊँची पहाडी पर जायँ, तो हमारे लाल परमाणुओं की संख्या शीघ्र ही बढ जाती है, और १३,००० फीट की ऊँचाई पर, हमारे शरीर में, समुद्री धरातल के बराबरवाले स्थान की अपेक्षा आधे लाल परमाणु और बढ जाते हैं। यह प्रकृति का सुप्रबन्ध है, जिसके फल-स्वरूप हमें प्राण-प्रद वायु अधिक परिमाण में मिलती है।

हम जानते हैं, कि पहाड की चोटियों पर समुद्र के सतह के बराबरवाले स्थानों की अपेक्षा हवा बहुत कम मिलती है, जिसका मतलब यह होता है, कि उस वायु में ऑक्सीजन (प्राणप्रद वायु) की कमी होती है। इसलिये ऐसी ऊँची जगह पर हमारे रक्त में अधिकाधिक लाल परमाणु बढते हैं, इसलिये उनका विस्तार अधिक होजाने के कारण वह फेफडे में जमी हुई वायु को पूर्णत खींच सकने में समर्थ होते हैं।

इन लाल परमाणुओं के अतिरिक्त रक्त के तरल में

माणु भी होते हैं, जिनका रँग सफेद होता है, और जो
फ़ेद परमाणु कहलाते हैं। ये लाल परमाणुओं की अपेक्षा बड़े
ते हैं, क्योंकि इनमें से प्रत्येक व्यास इच का $\frac{१}{२१००}$ अश
ता है। ये लाल परमाणुओं की तरह चक्की के पाट-जैसे गोल
ी होते, इनकी आकृति विषम होती है, और ये बराबर
भिन्न शक्ल बदलते रहते हैं। वैज्ञानिक लोग अभी इस
ात का निश्चय नही कर सके हैं, कि सफेद परमाणु एक ही
कार के होते हैं, या अनेक—उनकी विभिन्नता इसी से
सद्ध होती है, कि उनकी आकृति बराबर बदलती रहती
। सफ़ेद परमाणु रक्त में लाल परमाणुओं की अपेक्षा बहुत
म परिमाण मे पाये जाते हैं। वास्तव मे पाँच-सौ लाल
रमाणुओं के पीछे केवल एक सफ़ेद परमाणु पाया जाता है।
किन्तु इनकी सख्या सदा बदलती रहती है। पाचन-क्रिया के
समय इनका अनुपात इतना बढ जाता है, कि ३०० लाल
रमाणुओं के पीछे एक सफ़ेद परमाणु होजाता है, जबकि
अन्य समय इनका अनुपात ६०० के पीछे एक रह जाता है।

रोग-अवरोधक

इन सफ़ेद परमाणुओं का काम क्या है? इस विषय में
डॉक्टर लोग अभी अध्ययन कर रहे हैं, और वे सम्यक्
रूप से अभी यह नहीं जान सके हैं कि वे शरीर के स्वस्थ
रखने में किन-किन रूपों में लाभदायक हैं। पर इतना तो

वे जान गये हैं, कि रोगों को रोकने के लिये ये बड़े उपयोगी होते हैं।

यदि हमें कोई चोट लगती है, और दर्द होने लगता है, तो ये सफेद परमाणु उस जगह पर पहुँचकर जख्मी अणुओं को निगलने लगते हैं, जिनकी उपस्थिति हानिकारक होती है। मतलब यह, कि वह हानिकारक तत्वों को नष्ट करते हैं। जिस प्रकार शत्रुओं से रक्षा करने के लिये देश को सुसगठित और निपुण सेना की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार शरीर-रूपी देश की रोगाणु-रूपी शत्रुओं से रक्षा करने के लिये सफ़ेद परमाणु रूपी सैनिकों की आवश्यकता होती है। ज्योंही शत्रु देश पर चढ़ाई करते हैं, रक्षक सैनिक तुरन्त उसकी रक्षा के लिये दौड़ पड़ते हैं। इसी प्रकार ये सफ़ेद परमाणु खतरे की जगह पर तुरन्त पहुँच जाते हैं। साधारणत रोगाणुओं के साथ लड़ने में इनकी विजय ही होती है, यद्यपि कभी-कभी इनके लिये आक्रमणकारियों का रोकना कठिन हो जाता है।

ये सफ़ेद परमाणु शत्रु से इस प्रकार लड़ते हैं, कि यह उन्हें खा जाते हैं। यह मुरदार अश को भी साफ़ कर देते हैं—चाहे वह किसी चोट से हुआ हो, या अन्य कारण से। प्रकृति का ऐसा नियम है कि कहीं तीव्र रोगों में इन सफ़ेद परमाणुओं की सख्या बढ़ जाती है, और यह रोगा-

णुओं से लड़ने के लिये उसी प्रकार तैयारी करके विवर्द्धित होते हैं, जैसे मोर्चाबन्दी होने पर सिपाहियों की सख्या बढाकर मुकाबले के लिये तैयारी की जाती है।

इन दोनों के अतिरिक्त रक्त मे एक तीसरी चीज भी होती है, जिसका पता अभी हाल मे वैज्ञानिकों ने बडी खोज के बाद लगाया है। किन्तु यह अणु लाल परमाणुओं की अपेक्षा भी अधिक सूक्ष्म होते हैं, इसलिये उनका परीक्षण अत्यन्त कष्ट-दायक है। बहुत-से वैज्ञानिक तो उनका अस्तित्व मानने से भी इन्कार करते हैं।

गुप्त आश्चर्य।

इन सूक्ष्म अणुओं की सख्या का अनुमान एक घन इन्च में ३०० अरब से १२०० अरब तक लगाया गया है। इनकी आकृति भी विचित्र होती है—कुछ उभड़े हुए और कुछ चपटे होते हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है, कि रक्त-पिण्ड का निर्माण इन्हीं से होता है, क्योंकि किसी जगह चोट लगने पर ये रक्त-धमनियों की दीवार पर आकर जमा होजाते हैं, और इस प्रकार धमनियों से रक्त को बाहर नहीं गिरने देते। इनका अस्तित्व अभी तक पुरानी लाशों मे भी पाया गया है।

किन्तु हमें लाल परमाणुओं पर अभी और विचार करना है। इनका निर्माण रक्त में बराबर होता रहता है, इसलिये यह विश्वास किया जाता है कि इनका क्षय भी बराबर

होता रहता है। ये कोमल, लोचदार और फैलने-सिकुड़ने-वाले होते हैं, इसलिये वे सँकरे मार्ग में से भी घुसकर निकल-जा सकते हैं, और विस्तृत जगह पर पहुँचकर फिर ज्यों-के-त्यों होजाते हैं।

जब हम में रक्त की कमी होजाती है, तो प्रकृति फौरन् उस कमी की पूर्ति का प्रयत्न करने लगती है। यह याद रखना चाहिये कि हमारे शरीर के पूरे वजन का तेरहवाँ हिस्सा रक्त होता है, तुरन्त पैदा हुए बच्चों के शरीर में यह अनुमानत $\frac{1}{19}$ होता है। पहले तो रक्त के तरल अंश की बनावट ही ऐसी होती है, कि उसकी पूर्ति होजाती है, प जब लाल परमाणुओं की कमी हो जाती है, तो उसय परिमाण क्रमश बढता है, और इस प्रकार कुछ ई सप्ताह में रक्त अपनी साधारण अवस्था पुन प्राप्त कर लेता है।

नये लाल परमाणुओं का उत्पादन हमारी हड्डियों के गूदे से होता है। जहाँ रक्त की धमनियों की दीवार बहुत पतली होती है, उसी जगह नये लाल परमाणु रक्त-धारा में प्रविष्ट होते हैं।

प्रत्येक लाल परमाणु मे प्रोटीन का ढाँचा होता है, जिसमे हेमोग्लोबिन-नामक लाल-सा पदार्थ होता है। वास्तव मे रक्त का रग लाल इसी के कारण होता है। हेमोग्लोबिन में ऑक्सीजन (प्राणप्रद वायु) प्रचुर परिमाण में ग्रहण

करने की शक्ति होती है, इसलिये यह लाल परमाणुओं को कार्य करने के लिये पर्याप्त प्राणप्रद वायु देता है । यह (हैमोग्लोबिन) फेफड़ों से ऑक्सीजन लेकर समस्त शरीर में पहुँचाता है ।

हेमोग्लोबिन या लाल परमाणुओं का लाल पदार्थ पारदर्शी होता है, और इसकी आकृति विभिन्न जीवधारियों में विभिन्न तरह की होती है । मनुष्यों मे यह आकृति घनक्षेत्राकृति की-सी होती है ।

रक्त का एक अंश ऐसा है, जो हमारे लिये अत्यन्त महत्व की चीज है । यह चीज वह शक्ति है, जो रक्त को ठोस और गाढा बनाती है । हम जानते हैं कि जब हमारी उँगली चिर या कट जाती है तो उसमें से कुछ देर तक रक्त बहता है, पर शीघ्र ही रक्त घाव के पास जम जाता है, जिससे रिक्त स्थान भर जाता है, और रक्त बहना बन्द हो जाता है ।

रक्त जमता क्यों है ? वास्तव में यह प्रकृति का एक प्रसाद है, कि रक्त जम जाता है, और इस प्रकार रक्त-स्राव बराबर जारी न रहकर बन्द हो जाता है । ऐसा न हो, तो रक्त-स्राव से मनुष्य की मृत्यु हो-जा सकती थी । लासया या रक्त का तरल पदार्थ, जिसमें लाल परमाणु घूमते हैं, उसमे विभिन्न प्रोटीन के पदार्थ होते हैं । इनमें से एक का नाम फिब्रीनोजेन है । जब रक्त धमनी से बाहर निकलता है, तो

इस फ़िब्रीनोजेन में कुछ रासायनिक परिवर्तन हो जाता है, और वह ऐसे छोटे और पतले सूत्र उत्पन्न कर देता है, जिन्हें फ़िब्रीन कहते हैं। इन्हीं सूत्रों के कारण रक्त गाढा होकर जम जाता है। वास्तव में उस जमे रक्त में इन सूत्रों के समूह के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता।

किन्तु आश्चर्य की बात तो यह है, कि खून रक्त-वाहक नालियों और धमनियों में नहीं एकत्रित होता। यदि ऐसा होता, तब तो रक्त-प्रवाह ही बन्द हो जाता, और हम मर जाते। किन्तु रक्त-नाली में चोट लगते ही रक्त बाहर निकल आता है। तभी रासायनिक परिवर्तन आरम्भ होजाता है, और सूत्र बनकर घाव के पास जमा होजाता है, जिससे और रक्त नहीं बह सकता।

सूत्र-समूह।

जब ये सूत्र जम जाते हैं, तो पीले रङ्ग का तरल सा पदार्थ उस जमे हुए रक्त के ऊपर दिखायी देता है। इसे सीरम (Serum) कहते हैं। इन सूत्र-समूहों मे रक्त के परमाणु मिले होते हैं। यह दिलचस्प बात है, कि यदि शरीर से तत्काल निकले हुए रक्त को पात्र में रखकर उसका मन्थन किया जाय, तो जिस लकडी से वह मन्थन किया जायगा, उसमें सूत्र लग जायँगे, और वर्तन में केवल लाल तरल शेष रह जायगा, जिसमें लाल और सफ़ेद प**र**

माणु-युक्त सीरम होगा। उस अवस्था में वे फिब्रीन के साथ उस प्रकार मिल नहीं जाते, जैसे वह रक्त-पिण्ड के साथ पाये जाते हैं। जब ये सूत्र पानी से धोये जाते हैं, तो वह सफेद रेशेदार और लोचदार होजाता है। गर्मी इसके जमने में शीघ्रता करती है, और सर्दी विलम्ब।

वज्रपात

— ❀ —

वैज्ञानिकों का कथन है कि प्रत्येक घण्टे में संसार में १८०० बार बिजली गिरने का औसत पाया गया है, किन्तु इतने अधिक वज्रपात से संसार मे इतना नुकसान इसलिये नहीं होता, कि पृथ्वी पर बिजली का पूरा प्रकोप बहुत कम बार हुआ है।

जो बादल हमे आकाश में मँडराते दीखते हैं, उनमें बिजली होती है। चूँकि बाष्प-रूपी सूक्ष्म जल-कण संयुक्त होकर बृहत् बनते और उनका समूह एकत्रित होकर बादल बन जाते हैं, अत उनमे बिजली की ताकत बढ जाती है। उदाहरण के लिये आठ छोटी बूँदों के एकत्रित होने पर जो बूँद बनेगी, उसका व्यासार्ध छोटी बूँद का केवल दुगना होगा, पर उसमे बिजली की ताक़त आठ-गुनी हो जायगी। इस प्रकार बादल का टुकड़ा, जिसमे अगणित जल-कण होते हैं, बिजली की ताक़त से भरता जाता है, और जब वह दूसरे बादल के पास पहुँचता है, जो बिजली की काफी ताकत का होता है, तो उसमें से बिजली निकल पड़ती है, जिसे हम बिजली कौंदना कहते हैं।

यह बिजली कभी तो एक बादल से दूसरे बादल

ओर जाती है, और कभी पृथ्वी की ओर। बिजली चमकने के बाद एक या अनेक बार जोर की आवाजें होती हैं, जो कभी-कभी एक मिनट या इससे भी अधिक गर्जती रहती हैं। यह आवाज इस प्रकार उत्पन्न होती है कि बिजली की चमक अपने मार्ग मे बादल में इतनी तेजी से घुस जाती है कि उसके बीच मे शून्य जगह खाली हो जाती है। फिर उस शून्य जगह को भरने के लिये चारों ओर से तुरन्त हवा दौड पडती है—वास्तव मे वायु के इस प्रबल वेग की आवाज को ही हम बादल के गर्जने की आवाज कहते हैं।

यदि बिजली का मार्ग छोटा और सीधा होता है, तो केवल एक ही कडक सुनायी देती है, पर यदि उसका मार्ग टेढा होता है, और वह काफी दूर तक जाती है, तो लगातार कई बार कडक की आवाज सुनायी देती है, जो वास्तव मे बादलों से प्रतिध्वनित होकर हमें सुनायी देती है।

बिजली की चाल १,८६,००० मील प्रति सेकण्ड होती है, इसीलिये हम देखते हैं कि बिजली बादलों में पैदा होते ही कितनी तीव्रता से एक स्थान से दूसरे स्थान को पहुँच जाती है, किन्तु आवाज की चाल हवा में लगभग ११०० फीट प्रति सेकण्ड चलती है, इसीलिये हम आवाज चमक के बाद सुनते हैं।

बिजली कौंदने की क्रिया के लिये ३५ लाख बिजली के सेलों की जरूरत होगी।

बिजली तीन तरह से कोंदती है—एक तो गोलाकार, जो बहुत कम देखने मे आती है, और रहस्यपूर्ण होती है। दूसरी वह है, जो सर्पाकार चलती है। और तीसरी वह, जो चमककर नभ-मण्डल को प्रकाशित कर देती हैं, पर उसके चमकने पर आवाज नहीं होती। वास्तव में यह बिजली नही होती, वरन् बिजली की उस सुदूरवर्ती क्रिया का प्रतिबिम्ब होता है, जो पचास मील से कम दूरी पर नहीं होता।

हमारे लिये यह अच्छा ही है कि सैकड़ों के पीछे केवल एकाध-ही बिजली का कौंदना हम देखते हैं, और जमीन पर आनेवाली बिजली को भी मन्दिरों और ऊँचे मकानों में धातविक 'आकर्षण' लगाकर जमीन में पहुँचा दिया जाता, है या—पेड़ों पर गिरकर उसका कोप शान्त हो जात है। यह सच है कि बड़ी-बड़ी ऊँची इमारतों पर कई बार बिजली गिर चुकी है, किन्तु उनमे लगं हुए धातु के सींकचे बिजलो के करेण्ट (प्रवाह) को जमीन के अन्दर खींच ले जाते हैं, और इमारत साफ बच जाती है।

लोगों का यह खयाल गलत है कि बिजली एक-ही जगह पर दो बार नहीं गिरती। एक ही जगह बिजली दो-दो और तीन-तीन बार गिर चुकी है। यह बात बिल्कुल सच है कि बिजली चमकते समय पेड़ के नीचे खड़ा होना बड़ा

ही खतरनाक है; क्योंकि इस प्रकार कितने ही मनुष्यों और जानवरों की जानें गयी हैं। किन्तु साथ ही खेत में या खुले हुए स्थान में होकर चलना भी बिजली के कौंदने के वक्त खतरनाक है,—खासकर उस अवस्था में, जब किसी के पास धातु की बनी कोई चीज—छतरी आदि—हो।

बिजली गिरने से अपनी रक्षा करने के लिये यह आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति जमीन या फर्श पर हाथ-पाँव फैलाकर लेट जाय, और उस से ३०० फीट की दूरी तक कोई धातु की बनी चीज न हो। ऐसे समय पर पेड़ के नीचे न खड़ा होकर कम-से-कम उससे १०० गज दूर झाड़ी में घुस जाना अधिक अच्छा है।

किन्तु धातु के ऊपर बिजली का इतना अधिक असर होते हुए भी रेलगाड़ियों पर बिजली गिरने का समाचार नहीं मिलता। जहाजों पर बिजली गिरने के कुछ उदाहरण जरूर हैं, किन्तु बहुत थोड़े।

बिजली गिरने के भय से, आवश्यकता से अधिक चौकन्ना होना तो बेवकूफी है, पर इसके लिये खतरे की सम्भावना होने पर दूरन्देशी से कुछ करना बुरा नहीं है—उदाहरणार्थ, हमें इसलिये घबराना नहीं चाहिए कि मेज पर चाकू आदि-धातु की बनी चीजें रक्खी हैं, या हमारे चश्मे की कमानी धातु की बनी है, क्योंकि इन चीजों के द्वारा बिजली अल्पतम मात्रा में आकर्षित हो सकती है।

कुछ लोगों का खयाल यह है कि रवड़ की तली के जूते और रवड़ के पहियों की सवारी —साइकिल, मोटर-आदि से बिजली गिरने का भय जाता रहता है, किन्तु प्रोफेसर लॉय के मतानुसार यह सब बातें कोरी गप्प हैं, क्योंकि बिजली के द्रुत-वेग को ऐसी चीज़ें नहीं रोक सकती।

बिजली जब किसी पुरुष या स्त्री पर पड़ती है, तो उसका वस्त्र जलाकर उसे नङ्गा कर देती है।

बीसवीं सदी के आरम्भ में फ्रान्स में एक मशीन के पास खड़ी हुई तीन स्त्रियों पर बिजली गिरी थी, जिनमें से एक मर गयी थी, और बाक़ी दो के कपड़े-आदि झुलस गये थे। इसी प्रकार एक पेड़ के नीचे चालीस भेड़ें खड़ी थीं, जिनमें से बिजली गिरने के कारण बीस मर गयीं।

लोगों का यह भी विश्वास है कि बहुत-से पेड़ बिजली की मार से बचे रहते हैं, किन्तु जिन वृक्षों को सुरक्षित समझा जाता है, उन पर भी बिजलियाँ गिर चुकी हैं। फ्रांस के प्रसिद्ध वैज्ञानिक मोशिए कैमिल फ्लैमेरियों ने वृक्षों पर बिजली गिरने का हिसाब लगाया था, तो मालूम हुआ कि ५४ बलूत, २४ चिनार, ११ अखरोट, १० सनोवर, ६ देवदार, ४ नासपाती, ३ [illegible], ३ सेब और बबूल, अंजीर और नारङ्गी-आदि [illegible] बिजली गिर चुकी है।

आँखों को धोखा

— ❀ —

दुनियाँ मे आँखों-देखी चीज का विश्वास सब से अधिक किया जाता है। किन्तु क्या किसी चीज को देख लेना ही विश्वास करने के लिये पर्याप्त है? क्या हम अपनी आँखों से कोई चीज देखकर उसका अस्तित्व मान सकते हैं,—और क्या हम जिस चीज को जहाँ देखते हैं, वह वही होती है? वास्तव मे यह बात सच नहीं है। हमारी आँखे हमे धोखा देती रहती हैं, और बहुत-सी चीजों को हम जिस रूप मे देखते हैं, वह बिल्कुल वैसी नहीं होती।

शायद इसका सब से अच्छा उदाहरण सिनेमा के पर्दे पर फेकी जानेवाली तस्वीरें है। पर्दे की ओर देखते समय ऐसा प्रतीत होता है कि हम सड़क का दृश्य देख रहे हैं। मोटरे दौड़ती दीखती हैं, लोग इधर-उधर जाते दीखते हैं, उनके मुँह हिलते दीखते हैं, और वे बोलते दिखायी देते हैं।—सारा दृश्य सजीव-सा प्रतीत होता है, और हम जो-कुछ देखते हैं, वह वास्तव मे चलती हुई तस्वीरों के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, जिनमे हम वास्तविक जीवन का-सा दृश्य देखते हैं।

किन्तु वास्तव में ये दृश्य सजीव-से नहीं होते, बल्कि यह तो ऐसे चित्रों के समूह-मात्र होते हैं, जो मनुष्य के चलने-बोलने और दौड़ने-आदि, मोटर के दौड़ने और चिड़ियों के फुदकने की अवस्था में फोटोग्राफी की चतुरता-पूर्ण कला-द्वारा लिये गये बहुत-से चित्र होते हैं, जिनमें एक-दूसरे में कुछ ही अन्तर होता है, और वे क्रमबद्ध रूप से दिखाये जाने पर एक-दूसरे मिले हुए और सजीव-से दीखते हैं। वास्तव में इमसे आँखों को धोखा होता है,—क्योंकि एक चित्र देखने के बाद दूसरे को देखने में जिस अत्यल्प समय का अन्तर पड़ता है, उसे आँखें भाँप नहीं पाती, और चित्र एक ही, और अन्तर-हीन मालूम होता है।

हमारी आँखों के अन्दर रेटिना-नामक एक प्रकार की ऐसी झिल्ली होती है, जो अत्यन्त शीघ्रग्राहिणी होती है। हम किसी पेड को देखते हैं, तो रोशनी की किरणें आँखों के सामने दुहरे उभरे हुए लेंस (Lense) के द्वारा पड़ती हैं। फिर वह पर्दे के गोलाकार बारीक छेद पर पड़ती हैं, जिसे पुतली कहते हैं।

हम किसी व्यक्ति की आँख की ओर देखें, तो उसके बीचों-बीच में एक छोटा और काला निशान दिखाई देता है, जो अधिक चमकीली रोशनी पड़ने पर छोटा दिखायी देने लगता है, और कम चमकीली रोशनी पड़ने पर बड़ा

दिखायी देने लगता है। वास्तव में वह निशान काला नहीं है, बल्कि वह पुतली का छिद्र है, जो इस प्रकार बना हुआ है कि रोशनी की किरण ठीक परिमाण में उसके अन्दर जाती है,—न अधिक न कम।

आँखों में दूसरा चमत्कारपूर्ण गुण है, उपर्युक्त लेंस—जिसमें होकर सारी किरणें पुतली तक पहुँचती हैं। उसमें यह खूबी है कि जिस चीज़ को देखा जाता है, वह उसके अनुकूल अपनी गोलाई बना लेता है। इससे पुतली पर दर्शनीय चीज़ की स्पष्ट और ठीक प्रतिमा पड़ती है। दूसरे शब्दों में इसका मतलब यह हुआ, कि आँखों का लेंस उसी प्रकार 'फोकस' कर सकता है, जैसे हम फोटो लेने के कैमरे को करते हैं। यदि आँख में यह शक्ति न होती, तो जिन चीज़ों को हम देखते, वे अधिकांश में अस्पष्ट दीखतीं।

सब चीज़ें उलटी दीखतीं

रोशनी की किरणें दर्शनीय चीज़ से होकर लेंस पर पड़ती हैं, और उसका प्रतिबिम्ब पुतली पर उल्टा पड़ता है। इस प्रकार पेड़-आदि जितनी चीज़ें भी हम देखते हैं, उनका चित्र पुतलियों पर उल्टा पड़ता है। तो फिर हमें प्रत्येक चीज़ उल्टी क्यों नहीं दीखती? इसका कारण यह है कि मस्तिष्क में आँख से देखी हुई प्रत्येक चीज़ का वास्तविक रूप निश्चित करने की शक्ति होती है। आँख

प्रत्येक चीज को उलटा देखती है, पर दिमाग उसकी ठीक स्थिति समझ लेता है।

वास्तव मे यह आश्चर्य की बात हो, यदि हम खिड़की के बाहर देखते हों, या मेज के दूसरे छोर पर बैठे हुए चित्र की ओर देखते हों, और इन चीजों को उल्टी देखे।

यदि पुतली के सामने से कोई चीज, तेज रोशनी, या चमकीली चीज रक्खी जाय, और फिर वह एकदम हटा ली जाय, तो पुतली में उस प्रकाश की अनुभूति यकायक बन्द नही हो जायगी। चमकीली रोशनी का असर मिटने में $\frac{१}{१०}$ सेकण्ड का समय लग जायगा, और साधारण रोशनी का असर जाने में $\frac{१}{८}$ सेकण्ड।

यदि कोई जलती हुई लकड़ी लेकर शीघ्रतापूर्वक गोलाकार घुमाये, तो उस लकड़ी का जलता हुआ सिरा न नजर आकर वह वृत्त (गोला) ही देखने में आयेगा, जिसका सिलसिला बराबर जारी रहता है। इसका कारण यह है कि जब इस वृत्त के एक बिन्दु का चित्र हमारी पुतली पर खिंच जाता है, तो वह यकायक दूर नहीं होता कि इतने ही मे दूसरे बिन्दु का चित्र पुतली पर खिच जाता है, और इसी प्रकार दूसरे बिन्दु के चित्र का असर पुतली पर से हटने के पूर्व ही तीसरा बिन्दु आ पहुँचता है, और सिल-सिला नहीं टूटने पाता। हम समझते तो यह हैं कि हम

अग्नि का एक वृत्त देख रहे हैं, किन्तु वास्तव में वह वैसा नहीं होता।

इसके अतिरिक्त और भी अनेक प्रकार से आँखों को धोखा होता रहता है। बड़े-बड़े चतुर और बुद्धिमान् लोगों को भी कभी-कभी आँखों से ऐसी चीजें देखने का भ्रम हो जाता है, जिनका वास्तव से अस्तित्व भी नहीं होता। प्रोफेसर हक्सले का कथन है, कि उनकी स्त्री को कई बार यह भ्रम हुआ, कि उनके फर्श पर बिल्ली बैठी है, किन्तु वास्तव में बिल्ली उस समय नहीं बैठी थी। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि किसी आन्तरिक कारण से बिल्ली को देखनेवाला पुतली का अंश उसके चित्र से प्रभावान्वित हो उठता है, और बिल्ली काल्पनिक रूप में ही दीख गयी होगी।

आँखों से देखी हुई किसी चीज को तद्रूप में अङ्कित कर लेना कैसा कठिन है, इसका प्रमाण निम्नलिखित है—

एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक एक जगह विद्वानों की मण्डली में व्याख्यान दे रहे थे, और जब प्रोफेसर की आवाज के अतिरिक्त और कुछ सुनाई नहीं देता था, और सब श्रोता-गण चुपचाप ध्यानपूर्वक व्याख्यान सुन रहे थे, तो सहसा हॉल के पीछे का एक दर्वाजा खुला, और एक आदमी अद्भुत पोशाक पहने हुए आगे की ओर लपका, जिसके पीछे एक आदमी हाथ में कटार लिये आरहा था। पहला

आदमी जब हॉल के सिरे पर पहुँचा, तो मुड़कर एक दर्वाजे की ओर दौड़ा, और उसका पीछा करनेवाला भी उधर ही लपका।

व्याख्यानदाता ने कोई उत्तजना का भाव प्रदर्शित नहीं किया—न घबराया ही। वह केवल दर्वाजे की ओर जाकर अपनी मेज की ओर लौट आया, और फिर निम्न-लिखित बातें कहीं —

"महाशयो, जो-कुछ अभी-अभी हुआ है, उसके लिये मैं आपसे क्षमा माँगता हूँ। क्योंकि मैंने इस घटना को सुव्यवस्थित कर दिया है। मैं एक प्रयोग करने में आप लोगों की सहायता चाहता हूँ। आपमें प्रत्येक व्यक्ति इस घटना का एक-एक विवरण लिखे, जो आपने अभी अभी देखी है, और शीघ्र-से-शीघ्र लिखकर मुझे अपने अपने कागज दे दें।"

लोगों का विश्वास होगा, कि विद्वान् वैज्ञानिकों की मण्डली में से प्रत्येक व्यक्ति ने अपने सामने घटित ध्यान-पूर्वक देखी हुई घटना को ठीक-ठीक लिखा होगा। किन्तु किसी भी दो व्यक्तियों का पूरा विवरण एक-दूसरे से नहीं मिलता था। पहले आदमी की पोशाक के सम्बन्ध में केवल दो-चार विवरण कुछ कुछ मिलते थे, बाकी सब के विवरणों में विभिन्नता थी।

लोहे की कुल्हाड़ी कैसे तैरती है ?

बाइबिल मे एक कहानी आती है, कि एक आदमी की कुल्हाडी का लोहा पेड काटते समय बेंट से अलग होकर पानी मे गिरकर डूब गया। यह कुल्हाडी वह किसी से मँगनी माँगकर लाया था, इसलिये उसे बडी चिन्ता हुई। पर कहानी मे यह आता है कि पैगम्बर ने एक लकडी काटकर पानी में डाल दी, और 'कुल्हाड़ी का लोहा तैरने लगा।' निश्चय-ही हम यह बात जानते हैं कि साधारणत लोहा नहीं तैरता, इसलिये यह कहानी केवल चमत्कार बतलाने के लिये कही गयी है।

यद्यपि लोहा पानी पर नहीं तैरता, पर कुल्हाडी का लोहा तैराया जा सकता है। लोहा पानी मे इसलिये डूबता है कि यह पानी से भारी होता है, क्योंकि उसकी घनता पानी से लगभग ८ गुनी होती है, पर वही लोहा अगर पारे मे डाल दिया जाय, तो तैरेगा, क्योंकि पारे का घनत्व लोहे के घनत्व से भी अधिक होता है, जो पानी से १३$\frac{१}{२}$ गुना होता है। लोहा पारे पर उसी कारण तैरता है, जिस कारण शीशी का काग या वर्फ पानी पर तैरती है—ये चीजें तरल पदार्थ से हलकी होने के कारण उस पर तैरती हैं। अपेक्षाकृत अधिक घनता के तरल पदार्थ पर उससे कम घनता की चीज अवश्य तैरेगी।

आतिशी शीशा और उसका रहस्य

हममें से कुछ लोग यह बात जानते होंगे, कि यदि हम आतिशी शीशे को धूप मे सूर्य के सामने करके इस प्रकार पकड़ें, कि किरणे उस पर पड़े, तो शीशे की दूसरी ओर किरणों का समूह एकत्रित होजाता है, जिसमे साधारण किरणों की अपेक्षा बहुत अधिक गर्मी होती है। इसका कारण क्या है ?

कारण यह है, कि जिस समय हम दोनों ओर से उभरे हुए शीशे सूर्य की रोशनी मे रखते है, तो सूर्य की किरणे इसके एक ओर पड़कर शीशे-द्वारा दूसरी ओर निकल पड़ती हैं, पर पार करने के मार्ग (शीशे के अन्दर) में किरणे तिरछी या कोण बनाती हुई जाती हैं, और इस प्रकार समानान्तर किरणे, जो शीशे के कई भागों पर पड़ती हैं, मिलकर एक बिन्दु पर केन्द्रित होजाती हैं।

इस तरह जब सब किरणे एक जगह होजाती हैं, तो वहाँ स्वाभाविकतया गर्मी उन अशों की अपेक्षा, जहाँ एक ही किरण पड़ती है, अधिक होजाती है—इसका परिणाम यह होता है, कि जब आतिशी शीशे को हम इस प्रकार धूप में रखते हैं, तो उसके नीचे थोड़ी ही दूर पर कागज

या लकड़ी की तीलियाँ भी किरणों की सीध मे रखकर आग पैदा कर सकते हैं।

ग्रीष्म का प्रयोग

गर्मी के दिनों मे यह प्रयोग बड़ी दिलचस्पी के साथ किया जा सकता है। बाहर खुली जगह मे जाकर हम किसी भी जगह सूखी पत्तियों और तिनकों का ढेर जमा करके सूर्य की प्रखर किरणे आतिशी शीशे पर डालकर जला सकते हैं।

इस प्रयोग से सूर्य की किरणों को शक्ति का ज्वलन्त उदाहरण मिलता है। खिड़की के शीशों पर पड़कर सूर्य की किरणे पानी से भरे गिलास पर पड़ने के कारण उसके पास रक्खे हुए कागजों को जलाकर आग लगाने में समर्थ हो चुकी हैं। पानी से भरे हुए शीशे का बर्तन उस हालत में आतिशी शीशे का काम दे जाता है, और उसमे सूर्य की किरणे केन्द्रित होकर पास रक्खी हुई किताबों-आदि मे आग तक लगा सकती हैं।

इसलिये शीशे की सुराही, बोतल या पानी भरा हुआ शीशे का गिलास शीशेदार खिड़की पर खुला नहीं छोड़ना चाहिये।

गहरे शीशे पर सूर्य की किरणे डालकर भी ऐसा ही परिणाम प्राप्त किया जा सकता है, क्योंकि सूर्य की किरणे

स्थान पहुँचाया जा सकता है, क्योंकि दो-दो मिनट बाद ही रेल छोड़ने का प्रबन्ध कर लिया गया है। इससे डाक में कुछ भी विलम्ब नहीं होता, और रास्ते की भीड़ भी कम होती है, क्योंकि इस प्रकार प्रति दिन डाक लेकर १३०० मील दौड़नेवाली मोटर-बस कम होगई हैं। यह बिना ड्राइवर की रेल उनका काम पूरा कर देती है।

डाक के आठों स्टेशनों पर डाक के थैलों को उतारने और लादने के लिये यन्त्र लगे हुए हैं—इन स्टेशनों के प्लेट-फ़ॉर्मों पर डाकघर के कार्यकर्त्ता डाक लादने और उतारने के लिये आते हैं। प्लेटफ़ॉर्मों की लम्बाई ९० से ३१२ फ़ीट तक है।

किन्तु यह बात ज़रूर है कि सुरंग में होकर जाने-वाली सवारी-गाड़ियों की अपेक्षा यह रेलगाड़ी होती बहुत छोटी है। इसकी लाइनें दो फ़ीट के फ़ासले पर बिछी हुई होती हैं, और दुहरी लाइन होने की अवस्था में भी सुरंग का व्यास ९ फ़ीट का है। स्टेशनों पर सुभीते की

बिना ड्राइवर की रेल

— ❀ —

लन्दन-जैसे नगर में रास्ते की भीड कम करने के लिये जमीन से नीचे रेल्वे-लाइन खोलकर भारी चीजों को उसी रेल-द्वारा ढोने का प्रस्ताव किया गया था, जो वैसे तो बहु-व्यय-साध्य मालूम होता है, पर वास्तव मे उसका खर्च उतना नहीं पड सकता, जितना हम लोग साधारणत सोचते हैं। इस प्रस्ताव का प्रयोग भी किया गया है, क्योंकि लन्दन का जो सब से बडा डाकघर है, उसके नीचे डाक ले जाने के लिये ऐसी ही रेल खोल ली गई है।

यह डाकघर की रेल ७ फीट गहरी गोलाकार सुरङ्ग में लन्दन की विभिन्न सडकों के नीचे-नीचे साढे छ मील तक फैली हुई है। यह लाइन ह्वाइट-चैपल से पैडिंगटन तक गई है, और इसके बीच मे अनेक स्टेशन बने हुए हैं।

इन डाक लेजानेवाली रेलगाडियों में ड्राइवरों की जरूरत नहीं होती। वे बिल्कुल अपने-आप चलती हैं। फिर भी इनकी चाल ३५ मील फी-घण्टे होती है, और ये प्रति दिन ३०,००० डाक के थैले ढोती हैं। चाहे डाक से भेजे जानेवाली चिट्ठियों और पार्सलों की सख्या कितनी ही क्यों न बढ़ जाय, तो भी इन रेलों-द्वारा उन्हें फौरन् यथा-

स्थान पहुँचाया जा सकता है, क्योंकि दो-दो मिनट बाद ही रेल छोड़ने का प्रबन्ध कर लिया गया है। इससे डाक में कुछ भी विलम्ब नहीं होता, और रास्ते की भीड़ भी कम होती है, क्योंकि इस प्रकार प्रति दिन डाक लेकर १३०० मील दौड़नेवाली मोटर-बस कम होगई हैं। यह विना ड्राइवर की रेल उनका काम पूरा कर देती है।

डाक के आठों स्टेशनों पर डाक के थैलों को उतारने और लादने के लिये यन्त्र लगे हुए हैं—इन स्टेशनों के प्लेट-फॉर्मों पर डाकघर के कार्यकर्त्ता डाक लादने और उतारने के लिये आते हैं। प्लेटफॉर्मों की लम्बाई ९० से ३१३ फीट तक है।

किन्तु यह बात जरूर है कि सुरंग में होकर जाने-वाली सवारी-गाड़ियों की अपेक्षा यह रेलगाड़ी होती बहुत छोटी है। इसकी लाइने दो फ़ीट के फासले पर बिछी हुई होती हैं, और दुहरी लाइन होने की अवस्था में भी सुरंग का व्यास ९ फीट का है। स्टेशनों पर सुभीते की दृष्टि से आने और जानेवाली लाइनों के लिये पटरियाँ अलग-अलग बिछी हुई होती हैं, और बीच में प्लेटफॉर्म होता है।

इस प्रकार की सारी रेलें बिजली द्वारा चलती हैं, और विना ड्राइवर की रेलगाड़ियों का चलाना, रोकना और तेज या सुस्त करना कैबिन में लगे हुए बटनों द्वारा

होता है। जिस तरह कैबिन से ही सिग्नल गिराने और उठाने का काम होता है, उसी प्रकार वहीं से रेल चलाने और बन्द करने का काम होता है।

हर गाडी मे तीन डिब्बे होते हैं, और इस काम के लिये कुल ९० डिब्बे बनाये गये हैं।

इस आश्चर्य-जनक रेल्वे का निर्माण सन् १९१३ ई० में हुआ था, पर सन् १९१४ ई० मे जर्मन-युद्ध छिड जाने के कारण इसका काम रुक गया था, और इस सुरग को बहुत-सी ऐसी चीजें छिपाकर रखने के काम में लाया गया था, जो हवाई जहाज से गोले बरसाने पर तुरन्त नष्ट हो-जा सकती थीं।

इस रेल्वे के निर्माण में कुल १५ लाख पौण्ड का खर्चा हुआ था, इस व्यय के मुक़ाबले में इसकी उपयोगिता अत्यन्त अधिक है।

इसमे सन्देह नहीं, कि इस प्रकार की रेल्वे के निर्माण से बडे-बडे शहरों की सड़कों पर भीड-भडक्का कम हो सकता है। बिना ड्राइवर के चलने के कारण इस गाडी में खर्च भी कम पडता है, और काम भी काफी वेग से होता है।

———

नींद का रहस्य

— ०ఔ० —

बहुत समय तक जागते रहने या कठिन परिश्रम करने के कारण हमे नींद लगती है, और हम सोना चाहते हैं। इसका कारण क्या है ? वास्तव मे निद्रा क्या है, और हम प्राय नित्य एक ही समय पर सोकर क्यों उठते हैं ?

ये सब बड़े आवश्यक प्रश्न हैं, क्योंकि हमारे जीवन 'में नींद एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अगों में से है। अगर हमें स्वस्थ रहना है तो हमारे लिये पूरी निद्रा लेना पूर्ण आवश्यक है, और यदि शोरोगुल के कारण हमे बराबर जागते ही रहना पड़े, तो इसमें सन्देह नहीं, कि हम बहुत शीघ्र मर जाये।

जो बात मनुष्यों के लिये लागू हैं, वही अन्य जीवधारियों के लिये भी लागू हो सकती है, उन्हें भी विश्राम की आवश्यकता होती है। समय-समय पर तालाब, नदी और झीलों मे स्थित मछलियाँ भी जलाशय की पेंदी में जाकर आराम करती हैं। वहाँ वे सोती हैं,—यद्यपि उनकी आँखे बन्द नहीं होती, क्योंकि उनके पलके नहीं होती।

साँप भी सोते हैं, पर उनकी आंखे भी मछलियों की तरह खुली ही रहती हैं। किन्तु चिड़ियाँ सोते समय आँखे बन्द कर लेती हैं।

नींद के महत्त्व का वैज्ञानिक परीक्षण इस प्रकार किया जा चुका है कि कुत्तों के पिल्लों को लगातार चार-पाँच दिन न सोने देने के कारण उनकी मृत्यु हो जाती है। अधिक अवस्थावाले कुत्तों को ३० घण्टे से ज्यादा जागता रखने पर ऐसा मालूम होता है, कि उसने कोई नशीली चीज खाली है, और उसका दिमाग घूम रहा है। इस प्रकार के कुत्तों का खून लेकर अगर दूसरे जानवर के शरीर में पिचकारी-द्वारा डाला जाय, तो वे थके मालूम होते हैं, और तुरन्त सो जाते हैं।

सत्रहवी शताब्दी में जिस समय फ्रांस में धार्मिक अत्याचार का भयानक दौरदौरा था, उस समय सिपाही लोग अभियुक्तों के सामने दिनों-रात धौसा बजवाते रख-कर उन्हे सोने नहीं देते थे, जिस के फल-स्वरूप कितने ही आदमी मर जाते थे।

नींद वास्तव में क्या चीज है, यह अभी तक कोई वैज्ञानिक नहीं बतला सकता, न वह यही बतला सकता है, कि ऊँघ और जम्हाइयाँ आकर हमें सोने के लिये बाध्य क्यों कर देती हैं। हम लोग यही जानते हैं कि निद्रा वह अवधि है, जब शरीर शिथिल होजाता है, और उसके अधि-

धारा हिस्सों को आराम की आवश्यकता होती है, तथा वे फिर काम करने के लिये ताजे हो जाते हैं।

कठिन परिश्रम के बाद यह आवश्यक हो जाता है कि हमारे हाथ-पाँव आराम करे, और मस्तिष्क के जिस भाग का सम्बन्ध क्रिया, इच्छा, सतुलन, प्रयोजन, निश्चयता और सगठन, नियन्त्रण—आदि शक्तियों से है, वे अवश्य आंशिक या पूर्ण रूप से काम करना बन्द कर देते हैं।

मस्तिष्क के जिस भाग का सम्बन्ध श्वास क्रिया और रक्त-सचालन से है, उनका काम नींद में भी नही बन्द होता, क्योंकि यदि ये दोनों क्रियाएँ बन्द हो जाये, तो हम सोने पर मर जाये।

लेकिन यह बात स्पष्ट है कि जब हम सोते हैं, तो हमारे हृदय की गति मन्द पड़ जाती है, और साँस भी धीरे-धीरे चलने लगती है। सोते समय आँख से आँसू भी नहीं निकलते, और वे सुषुप्त अवस्था में रहते हैं।

जब हम सोने के लिये लेटते हैं, तो नींद एकदम नही आजाती। थकावट की एक अनुभूति धीरे-धीरे हमारे शरीर पर अधिकार जमाती है, और आँखें मुँदने लगती हैं। इसका कारण यह है कि हमारी आँख के कोयों पर अश्रु-कण की जो नमी बराबर दौड़ती रहती है, वह धीरे-धीरे अपना काम मद्धिम करने लगती है।

हम अपनी आँखें बन्द क्यों करते हैं ?

आँख मूँदने से सोने में सहायता मिलती है। इसका कारण यह है कि जब तक आँखों में रोशनी पहुँचती रहती है, तब तक वह चक्षु-स्थित स्नायु को सक्रिय रखकर मस्तिष्क से काम लेती रहती है।

अगर हम रात को बहुत देर तक बैठे रहकर थक जाते हैं, तो हमारी आँखें अन्दर घुसने लगती हैं। इसका कारण यह है कि स्नायु और माँस-पेशियाँ निष्क्रिय होकर ठीक तौर पर आँखों को काम करने में मदद नहीं देतीं। आँखें खुली रखने के लिये भी उसी प्रकार की चेष्टा की आवश्यकता होती है, जैसे हाथ उठाये रखने में। इसीलिये निद्रावस्था में जब हम निश्चेष्ट होजाते हैं, तो आँखें बन्द रहती हैं। ज्यों-ही हम जगकर सक्रिय होजाते हैं, आँखें सहज में ही खुल जाती हैं। साधारणतया सोते से उठकर हम आँखें हथेली से मींजते भी हैं जिससे आँसुओं की लड़ियां उत्तेजित होकर शुष्क-प्राय आँखों पर पुन नम अश्रुकण फेर देती हैं।

जिस समय विभिन्न अगों की शिथिलता के कारण शरीर कम उष्णिमा उत्पन्न करने लगता है,—तो सोते समय हम शरीर को वस्त्र से ढककर उस उष्णिमा की पूर्ति कर लेते हैं। पशुओं में भी हम यही बात देखते हैं। हम देखते हैं कि जब कुत्ते या बिल्ली को नींद लगती है, तो

वे अपने शरीर को सिकोड़कर सोते हैं। सोने पर चूँकि मांस-पेशियों का हिलना बन्द हो जाता है। इसलिये स्वभावत गर्मी कम उत्पन्न होती हैं।

जब हम सोना आरम्भ करते हैं, तो पहले इच्छा-पूर्वक अंग-सञ्चालन की क्रियाओं से वंचित होते हैं। पर कुछ समय तक लोगों के बातचीत करने, सड़क की धूम-धाम और रेल की सीटी-आदि सुनते रहते हैं, किन्तु धीरे धीरे आवाज का सुनायी देना भी बन्द हो जाता है।

सोने का आरम्भिक समय अधिक बहुमूल्य और आवश्यक है, क्योंकि परीक्षण से यह सिद्ध होगया है कि नींद शुरू करने के एक घण्टा बाद तक खूब गम्भीर निद्रा आती है।

बच्चों की नींद।

बड़े आदमियों की अपेक्षा बच्चों को नींद की अधिक आवश्यकता है, और यदि उन्हें काफ़ी नींद नहीं मिलती, तो उनके स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है। माता-पिता को चाहिए कि वे अपने बच्चों को रात में अधिक देर तक कदापि न जागने दें। छोटे बच्चे लगभग सारे दिन सो सकते हैं, और बड़े बच्चों को २४ घण्टे में १० घण्टे प्रति दिन सोने की आवश्यकता होती है—नवयुवक और नव-युवतियों को ८ घण्टे प्रति दिन सोना चाहिए, और बूढे बुढियाओं के लिये ~ छ घण्टे काफी हैं।

रहते हैं, रुक जाते हैं। इससे वे रक्त-कोश को कम उत्तेजित करते हैं, और रक्त-सचालन मन्द पड जाता है। इसी से ऊँघ लग आती है।

कुछ समय तक विश्राम करने के बाद रक्त-कोश पर अधिकार रखनेवाली स्नायु फिर ताजी हो उठती हैं, और मस्तिष्क का रक्त-सचालन बढ़ जाता है, तथा सोनेवाला जाग उठता है।

जो लोग बहुत समय तक जागते रहने के कारण थके होते हैं, वे प्रतिकूल वातावरण मे भी सो जाते हैं। यहाँ तक कि कभी-कभी घुडसवार और ऊँट-सवार सोते-सोते सफर कर लेते हैं। ऐसे भी उदाहरण मौजूद हैं, जब सैनिकों ने निद्रा लेते हुए भी 'मार्च' किया है—और एक सैनिक की तो यह भी कहानी है, कि तोप चलाते समय भी वह उसके पास पडा-पडा सो रहा था।

सूर्य का कलङ्क

— ❀०❀ —

सैकड़ों वर्ष से बड़े-बड़े धुरन्धर खगोलविद् प्रकाश और गर्मी के इस महान् पुञ्ज सूर्य का अध्ययन कर रहे हैं, किन्तु जब तक दूरबीन का आविष्कार नहीं हुआ, वे लोग उसके सम्बन्ध में अधिक नहीं मालूम कर सके। तोभी, केवल आँखों से यह देखा जा सका था कि समय-समय पर कुछ काले चिह्न सूर्य पर दिखायी देते हैं। यद्यपि यह कोई नहीं बता सका, कि वे चिह्न क्या हैं। जब दूरवीक्षण यन्त्र का प्रचार हुआ, तो ये काले निशान और अच्छी तरह देखे जा सके, और शीघ्र ही यह मालूम होगया कि यह निशान सूर्य-मण्डल पर पूर्व से पश्चिम को धीरे-धीरे चलते हैं। इस प्रकार सूर्य के पूर्वी छोर से पश्चिमी छोर तक की यात्रा कुल पन्द्रह दिन में समाप्त होती है।

सूर्य का कलङ्क

— ❀०❀ —

सैकड़ों वर्ष से बड़े-बड़े धुरन्धर खगोलविद् प्रकाश और गर्मी के इस महान् पुञ्ज सूर्य का अध्ययन कर रहे हैं, किन्तु जब तक दूरबीन का आविष्कार नहीं हुआ, वे लोग उसके सम्बन्ध मे अधिक नही मालूम कर सके। तोभी, केवल आँखों से यह देखा जा सका था कि समय-समय पर कुछ काले चिह्न सूर्य पर दिखायी देते हैं। यद्यपि यह कोई नहीं बता सका, कि वे चिह्न क्या हैं। जब दूरवीक्षण यन्त्र का प्रचार हुआ, तो ये काले निशान और अच्छी तरह देखे जा सके, और शीघ्र ही यह मालूम होगया कि यह निशान सूर्य मण्डल पर पूर्व से पश्चिम को धीरे-धीरे चलते हैं। इस प्रकार सूर्य के पूर्वी छोर से पश्चिमी छोर तक की यात्रा कुल पन्द्रह दिन में समाप्त होती है।

पहले-पहल यह समझा गया था कि ये चिह्न बुध-ग्रह के अन्य छोटे ग्रहों के गिर्द गुजरने पर उसकी छाया के रूप में दिखायी देते हैं। गैलीलियो ने बतलाया कि ये निशान सूर्य के ही अंश हैं। ऐसी अवस्था में यह स्पष्ट हो जाता है कि सूर्य अपनी धुरी पर २६ दिन में घूम जाता है। वास्तव में इन निशानों ने ही यह बात सिद्ध की है।

उन्नीसवीं शताब्दी तक अधिक कुछ नहीं मालूम हो सका था। फिर बहुत दिनों की धैर्यपूर्ण खोज से यह मालूम हुआ, कि ये निशान, जो हर वर्ष बदलते रहते थे, कुछ न्यूनाधिक रूप में ग्यारह वर्ष बाद फिर उसी निश्चित और क्रमबद्ध रूप में दिखायी देते हैं। कभी-कभी तो सूर्य पर कोई भी निशान नहीं दिखायी देता, और कभी एकदम बहुत-से चिह्न दिखायी दे जाते हैं। थोड़ी-सी संख्या से शुरू होकर साढे चार वर्ष में ये निशान अधिकाधिक संख्या में हो जाते हैं। फिर साढ़े छ वर्ष तक यह संख्या घटती जाती है, और फिर कम-से-कम होजाती है—इसके बाद फिर इसी प्रकार का चक्कर शुरू हो जाता है।

दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह मालूम हुई है, कि सूर्य के इन निशानों के साथ उत्तरी तारों की संख्या भी घटती-बढती रहती है। जिस समय सूर्य पर अधिक-से-अधिक निशान होंगे, ये तारे अधिक संख्या में और चमकदार दीखेंगे, और कुतुबनुमा भी उधर अधिक फैलता (झुकता) है। किन्तु यह बात नहीं है, कि हमेशा सूर्य का बड़ा निशान ही चुम्बक पर (जिसकी सुई कुतुबनुमा में लगी होती है) असर डालता हो। पर यहाँ यह प्रश्न होता है, कि ये निशान हैं क्या चीज ?

दूरबीन से देखने पर मालूम होता है, कि इन निशानों के मध्यवर्ती काले भाग पर जाला-सा लगा हुआ होता है।

यद्यपि देखनेवाले को सूर्य के निशान काले दीखते हैं, पर वे वास्तव में वैसे नहीं हैं। हाँ, वे सूर्य के अन्य अत्यन्त चमकीले भागों की अपेक्षा काले अवश्य हैं। वैज्ञानिक औजारों से देखने पर मालूम हुआ है, कि सूर्य के उन काले निशानों से भी समस्त सूर्य-मण्डल से निकलनेवाली गर्मी या शतांश निकलता है। इसका मतलब यह है, कि सूर्य का काले-से-काला भाग भी काफी चमकीला है, और उसकी रोशनी गैस के हण्डे की रोशनी से कहीं अधिक है।

सूर्य के निशान प्राय समूह के रूप में दिखायी देते हैं, और कुछ वर्ष पहले तक लोगों का यह ख्याल था, कि यह सूर्य-मण्डल में स्थित बहुत बड़े-बड़े खोह हैं। किन्तु अब यह विचार मान्य नहीं है। अब यह विश्वास किया जाता है कि ये निशान ऐसे हैं, जिनमें से कुछ तो सूर्य-मण्डल पर ऊपर की ओर उभडे हुए हैं, और कुछ नीचे की ओर दबे हुए हैं।

उनमें-से बहुत से निशान तो बहुत ही छोटे हैं, जिनका अँधेरा भाग ५०० मील से अधिक चौडा नहीं है, पर कुछ निशानों का अँधेरा भाग ५०,००० मील तक चौडा है। जो भाग कम अँधेरे हैं, उनका कुल जोड़ १,५०,००० मील या पृथ्वी के व्यास का लगभग २० गुना है। वास्तव में सूर्य के एक बडे निशान में यदि जमीन को रख दिया जाय, तो पृथ्वी केवल एक छोटी बूँद-सी दिखाई दे।

इन निशानों का बढना वास्तव मे बडी दिलचस्पी का विषय है। इन निशानों के आस-पास चमकीली धारियाँ नजर आती हैं। फिर छोटे-छोटे काले बिन्दु नजर आते हैं, जिनकी संख्या बढती जाती है, और वे परस्पर मिल जाते हैं। इस क्रिया मे कुछ घण्टे या कभी-कभी कई दिन तक लग जाते है। कभी-कभी ये बडे निशान छोटों से अलग हो जाते हैं—और ऐसा भी होता है, कि बडे निशान टुकडे-टुकडे होकर छोटों के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं।

इन निशानों के द्वारा एक अत्यन्त महत्वपूर्ण बात यह मालूम हुई है कि सूर्य का सारा मण्डल अपनी धुरी पर एक ही समय मे नहीं घूमता। भूमध्य-रेखा को चक्कर पूरा करने में २५ दिन लगते हैं, जबकि ३० वीं अक्षांश रेखा पर उसका चक्कर २७ दिन में पूरा होता है। ४५ वी अक्षांश रेखा पर इस चक्कर के पूरे होने मे २९ दिन लगते हैं, और सूर्य का वह भाग, जिसकी तुलना हमारे ध्रुवों के साथ की जा सकती है, ३५ दिन मे घूमता है।

किन्तु यह सब जान लेने पर भी हमें अभी जानना ही है कि सूर्य के ये काले धब्बे हैं क्या चीज ? किसी समय यह समझा गया था यह सूर्य के धरातल पर उमडे हुए भाग है, जिनके निशान ज्वालामुखी पर्वतों के मुँह हैं; दूसरा विचार यह था कि यह निशान सूर्य-मण्डल की अपनी चीज नहीं है, बल्कि यह ऊपर से उतरता हुआ

ठण्डा क्षेत्र है, जो सम्भवत धातविक ढग के हैं।

इस समय खगोल-विशारदों का यह खयाल है, कि यह निशान चलती हुई हाइड्रोजन की आँधियाँ हैं। स्पेक्ट्रो-हिलियोग्राफ-नामक यत्र से सूर्य का फोटोग्राफ लेने पर यह बात प्रमाणित तभी हो जाती है, कि उस पर काले निशान का आवरण वास्तव में हाइड्रोजन गैस की तरह छाये हुए हैं। इन काले निशानों की उत्पत्ति का कारण यह समझा जाता है, कि सूर्य-मण्डल की गैसें सहसा फैलकर एक तूफान-सा पैदा कर देती हैं, जिससे हाइड्रोजन खिच उठता है।

हमारी पृथ्वी पर जो तूफान आते हैं वे भी यद्यपि ऐसे भयानक होते हैं, कि क्षण-भर में प्रलय का दृश्य उपस्थित कर सकते हैं, किन्तु हमारी पृथ्वी का तूफान सूर्य-लोक के तूफान के सामने कुछ भी नहीं है, क्योंकि वे तूफान १५०, ००० वर्ग मील के क्षेत्र में उठते हैं, और पाँच लाख मील की ऊँचाई तक जाते हैं। ऐसे तूफान में पड़कर तो हमारी पृथ्वी क्षण-भर में भस्म हो जा सकती है।

किसी कारण से गैसें जब वायु-मण्डल में सहसा फैल जाती हैं, तो उसका तापमान कम हो जाता है। इस ताप-मान की कमी के कारण ही सूर्य के निशान उसके अन्य भागों की अपेक्षा काले नजर आते हैं।

मनुष्य को अच्छा और बुरा बनानेवाली नाड़ियाँ



ससार मे मनुष्य जीवन से सम्बन्ध रखनेवाले बहुत-से ऐसे प्रश्न हैं, जिनका निश्चित् रूप से आज तक पता नहीं लग सका है। बहुत-से विद्वान् सदा से उनके अनुसन्धान में लगे हुए हैं, और लगे रहेंगे। मनुष्य के शरीर के भीतर बहुत-सी नसे-नाडियाँ-आदि हैं, जिनमें से कोई भी बिना प्रयोजन के नहीं है। पर किसका क्या प्रयोजन है—इस रहस्य को आज तक ससार नही समझ सका। पाश्चात्य देशों का ध्यान भी बहुत समय से इस ओर लगा हुआ है। एक अँग्रेज तत्वज्ञ—जूलियन हक्सले—ने यह सिद्ध कर दिया है, कि थाईरौड ग्लाण्ड (Thyroid gland) में जिस रस का कोष है, यदि उस रस का समावेश छोटे जन्तुओं के रक्त में कर दिया जाय, तो उसके प्रभाव से उनके शरीर के कुछ भागों की असाधारण वृद्धि हो जाती है। इस बात को उन्होंने छोटे मेंढक (Tad poles) पर आजमाकर देखा है। फ्रास-निवासी महाशय वरनाफ ने बलपूर्वक यह कहा है, कि शरीर के भीतर जीव का निवास थाईरौड ग्लाण्ड में ही है, और विज्ञान की दृष्टि में जीवन

को अनन्त बनाने में और कोई कारण बाधक नहीं हो सकता, यदि जर्जर हो जाने पर इस ग्लाण्ड के स्थान पर दूसरा नया और पुष्ट ग्लाण्ड लगा दिया जाय।

पर जहाँ इन दोनों विद्वानों ने अपने अनुसन्धान को केवल थाईरौड ग्लाण्ड तक ही सीमित रक्खा है, वहाँ वनस्पति-विज्ञानवेत्ता, शरीर-विज्ञानवेत्ता और दूसरे विशेषज्ञ सब छिद्र-रहित ग्लाण्डों की जाँच में बड़ी तत्परता से लगे हुए हैं, और वास्तव में किस ग्लाण्ड का क्या प्रयोजन है—यह ढूँढ निकालना चाहते हैं। उनका मत है, कि केवल थाईरौड ग्लाण्ड ही नहीं, बल्कि 'थाइमस' 'पेच्यूइटेरी' और 'सुपरआर्नेल ग्लाण्डों' का भी निकट सम्बन्ध उस परिवर्तन से है, जो शारीरिक और मानसिक दशाओं में अचानक हो जाते हैं, और जिनके 'कारणों' से हम आज तक अनभिज्ञ हैं। रोग-सम्बन्धी जाँच से यह बहुत-कुछ सिद्ध होगया है, कि जीवन-श्रोत इन्हीं ग्लाण्डों से बहता है।

इस मत की पुष्टि बहुत-सी ऐसी घटनाओं से होती है, जिनकी वैज्ञानिकों ने समय-समय पर जाँच की है। एडना वेलसी १८ वर्ष की एक युवती थी। उसे चोरी करने की आदत थी, और इस समय यह युवती न्यूयॉर्क में विशेषज्ञों की जाँच में है। इसका थाइरौड ग्लाण्ड बढ़ा हुआ है, और वैज्ञानिकों का यह विचार है, कि यह मनोवृत्ति, जिससे उसे

चोरी करने का अभ्यास होगया है, इसके थाइरौड ग्लाण्ड का वडा होना ही है । इस नात का पूरा प्रयत्न हो रहा है, कि जिन-जिन वातों से इस मत की पुष्टि की सम्भावना हो, उनका गम्भीरतापूर्वक पता लगाया जाय । जैसे ही यह वात सिद्ध हो जायगी, वैसे ही जीव-विज्ञान मे अनुसन्धान के लिए एक नई स्थिति उपस्थित हो जायगी, और अपराध-विज्ञान म नए जीवन का सचार हो जायगा ।

एडना वेलसी वाडूर्स-टापू के 'मैनहॉटन स्टेट अस्पताल' मे नर्स का काम करती थी । एक दिन वह चोरी करते समय पकड ली गई, और यह वात उसे स्वीकार करनी पडी । अस्पताल के अध्यक्ष डॉक्टर मारकस हेमैन और उनकी सहकारी नर्स मिस रोज रेली के आदेश से पुलिस ने इसे हिरासत मे ले लिया । पर इसके वाद जिससे भी इस युवती का ससर्ग हुआ, उस पर इसने मोहिनी-मत्र सा फूँक दिया । यहां तक कि जेल के वार्डर ने इसकी जमानत स्वीकार करली । उधर सरकारी वकील उस पर अभियोग चलाने मे आनाकानी करता रहा । वाद में जब उसकी मुलाकात मिस रेली से हुई, जिनकी अनुमति से ही यह मामला चला था, तो वह भी मुकदमा उठा लेने को प्रस्तुत होगई । उसी समय समाचारपत्रों मे यह समाचार पढकर उसकी माता, जिससे वह वहुत दिनों से अलग थी, उसके पास आगई ।

डॉक्टर हेमैन का इस युवती से कोई विशेष परिचय नहीं था। उन्होंने इस बात पर जोर दिया, कि उस पर अभियोग अवश्य ही चलाया जाय, जिसमें अस्पताल के सैकड़ों अन्य वेतन-भोगी कार्यकर्ताओं को शिक्षा मिल जाय। जब उन्होंने देखा, कि सरकारी अफसर तक इसमें आनाकानी कर रहे हैं, तो उन्होंने इस युवती और उसकी माता को मुलाकात के लिये बुलाया। जिस समय वह उस युवती से बातचीत कर रहे थे, उन्होंने देखा, कि उसका थाईरौड ग्लाण्ड साधारण तौर से बहुत अधिक बड़ा है। उन्होंने उसी समय जज रेली को लिख दिया, कि फ़ैसला उस समय तक के लिए स्थगित कर दें, जब तक कि उसके इस ग्लाण्ड की जाँच न कर ली जाय। ऐसा ही हुआ।

डॉक्टर हेमैन को शक था, कि इस युवती के बार-बार चोरी करने में यह पता लग गया था, कि पहले भी इसने कई बार चोरी की थी, और इसके थाईरौड ग्लाण्ड के साधारण से बड़ा होने में कार्य और कारण का सम्बन्ध सिद्ध होजायगा। जब उनसे इस विषय में और छान-बीन के प्रश्न किये गए, तो उन्होंने साफ़ कह दिया, कि छिद्र-रहित ग्लाण्ड के विषय में जो कुछ भी कहा जाय, वह केवल अनुमान पर निर्भर है, क्योंकि अब तक उनके प्रभाव और क्रिया के विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं मालूम है।

और आग्रह करने पर इस विषय में अपने विच

प्रकट करते हुए डॉक्टर हेमैन ने कहा, कि आम तौर पर प्रमाद या मानसिक विकार दो भागों मे विभक्त किया जा सकता है। एक तो ऑरगेनिक, (जब शरीर के किसी अङ्ग पर कोई आघात हुआ हो) और दूसरा, क्रियात्मक। विशेषकर मानसिक विकार की उत्पत्ति इस दूसरे कारण से ही होती है। इस दशा में मनुष्य बड़े भयानक और असाधारण काम कर डालता है। बहुत-से रोगियों का मस्तिष्क, जिनकी मृत्यु ऐसा कोई भयानक काम कर डालने के कारण होगई, मृत्यु के बाद तुरन्त ही जाँचने पर पता लगा, कि उसकी दशा स्वाभाविक थी, और उसमें कोई भी बिगाड़ नहीं हुआ था।

इस बात से वैज्ञानिकों ने यह नतीजा निकाला, कि ऐसे विकार का कारण या तो रक्त में रासायनिक परिवर्तन है, या छिद्र-रहित ग्लाण्डों की गति मे न्यूनता या अधिकता है। या फिर यह भी सम्भव है, कि इन दोनों कारणों के मिल जाने से ही ऐसे विकार उत्पन्न होते हों, क्योंकि इन ग्लाण्डों से एकदम बहुत-सा रस निकलकर रक्त में मिल जाने से रासायनिक परिवर्तन हो सकता है।

छिद्र-रहित-लाण्ड के अन्तर्गत थाईरौड, पाराथाईरौड, थाईमस, पिट्यूटरी बॉडी, पाइनियल बॉडी, सुपर-आर्नेल, पैरागैंगलिया, एरोटिक ग्लाण्ड और ग्लोमस कैरोटिकस नाड़ियाँ हैं। शरीर-विज्ञान की दृष्टि में, छिद्र-

रहित ग्लाण्डों और दूसरे ग्लाण्डों में यह अन्तर है, कि इस ग्लाण्ड का ऐसी नसों से सम्बन्ध नहीं है, जो इसके रस को बाहर तक ले जा सकें और उसकी गन्दगी निकाल सकें। जो रस उसमें बनता है, वह लाइम्फ के द्वारा पट्ठों और रक्ताशयों में जाता है। लाइम्फ भी रक्त से मिलती-जुलती हुई एक चीज है, जो 'लिम्फेटिक' नाडियों-द्वारा शरीर में फैलती रहती है।

यह ग्लाण्ड एक प्रकार का कोष है, जो रक्त से कुछ अंश ले लेता है, और फिर इस प्रकार मिश्रित हुए भाग से एक ऐसा रस तय्यार कर देता है, जिसमें बड़ी विचित्र और जादू का-सा असर रखनेवाली शक्ति होती है, और फिर इस रस का प्रवाह या तो उन विस्तृत नलियों-द्वारा होता है, जिन्हें रक्ताशय कहते हैं, या उनसे भी अधिक सूक्ष्म नलियों-द्वारा, जो सारे शरीर में फैली हुई हैं, और जिन्हें 'लिम्फेटिक' कहते हैं।

इस बात का निश्चित रूप से पता नहीं लग सका है, कि इस ग्लाण्ड से बने हुए रस का प्रभाव शरीर पर और विशेषकर मस्तिष्क पर किस प्रकार का होता है। पर ऐसे रोगियों की जाँच से, जिनके यह ग्लाण्ड विकृत होगये हैं, या बिल्कुल निकाल ही दिये गये हैं, यह भली प्रकार सिद्ध होगया है, कि इसका प्रभाव बहुत ही अधिक होता है।

इन ग्लाण्ड्स में से किसी एक को भी काटकर निकाल देने से मृत्यु की बहुत-कुछ सम्भावना है। यदि जन्म के समय बालक का थाईरोड बहुत निर्बल हो, तो वह सदा ऊल-जलूल ही-सा रहेगा। पिटयूइटरी बॉडी में निर्बलता आजाने से एक विशेष रोग होजाता है, जिसे 'एक्रोमेगेला' कहते हैं। इसमें पैरों और चेहरे पर सूजन आजाती है।

डॉक्टर अरनेस्ट ई० टकर ने, जोकि न्यू-यॉर्क के शरीर-शास्त्रज्ञ हैं, कुछ ही दिन हुए, यह मत प्रकाशित किया, कि इस ग्लाण्ड की गति-विधि में अन्तर होजाने से बहुत-से विवाहित स्त्री-पुरुष एक-दूसरे से अलग होजाते हैं। इस पर किसी हँसोड़े ने यह कह डाला था—कि शायद आजकल बहुत-सी स्त्रियों का दिमाग सूज गया है।

वैज्ञानिक संसार ने अभी वारनाफ का यह मत कि जीवन अनन्त हो सकता है, पूर्णतया स्वीकार नहीं किया है, पर यह मान लिया है, कि थाईरोड में बड़ी विचित्र शक्ति है, और इसका ठीक प्रकार से सञ्चालन करने से मनुष्य फिर-से जवान बन सकता है।

मि० जूलियन हक्सले के प्रबन्ध में बहुत-से दुर्बल बच्चों के थाईरौड का रस पिचकारी-द्वारा रक्त में पहुँचाया गया, और इससे उनकी दुर्बलता दूर होगई, तथा वह स्वस्थ होगये। मिस कोनी एडिस एक ५० वर्ष की अँग्रेज विदुषी हैं, जिन पर यह प्रयोग किया गया, और उनका कहना

है, कि उनकी अवस्था अब एक १५-वर्षीया युवती की सी है। ऐसी बातों से और उनके अतिरिक्त और बातों से भी, जिनका पता अनुसन्धान से लगा है, इस विचार की पुष्टि होती है, कि थाईरॉइड से निकले हुए रस से और पट्ठों के नाश होने और बनाने की क्रिया से, जो सदा शरीर मे होती रहती है, निकट-सम्बन्ध है। ऐसी अवस्था मे इस रस का अधिक परिमाण मे निकलना शारीरिक विकास की गति मे बहुत तीव्रता उत्पन्न कर देता है, और इससे नवजीवन का सञ्चार होता है। साथ ही यह भी सम्भव है, कि यह किसी नाडी-केन्द्र पर बुरा प्रभाव डाले, और उससे कुछ ऊट-पटाँग काम कर बैठे। इस रस की इस शक्ति को किस प्रकार काबू में लाया जाय, यह प्रश्न अनुसन्धानकर्ताओं के सम्मुख है, और इसे हल करने का यह पूरा प्रबन्ध कर रहे हैं।

थाईरॉइड ग्लाण्ड के नीचे हवा की नली के सातवें छिद्र से मिला हुआ थाइमस है। यह दूसरा आवश्यक ग्लाण्ड है, और शरीर पर उसका भी बहुत प्रभाव पडता है। इसके विषय मे अब तक कुछ मालूम नहीं हो सका है। कहा जाता है, कि जन्म के समय पर ही यह अपनी पूरी सीमा तक बढ जाता है। पर यह अनिश्चित है। गाइना के कुछ सुअरों पर अनुभव से मालूम हुआ है, कि यदि यह निकाल भी दिया जाय, तो मृत्यु नहीं होती। पर फिर भी ग्लाण्ड में

ग्लाएड्स की ओर अधिक ध्यान देने का महत्व
विज्ञानवेत्ताओं की समझ में आगया है। इसका म
केवल उसी दशा से नहीं है, जबकि शारीरिक कार्य
में कोई गडबडी हो जाय, बल्कि ऐसी हर दशा से
जब इन दशाओं की साधारण अवस्था मे कोई भी
अन्तर हो जाय ।

फ़ोटोग्राफ़ी के चमत्कार

— ८ —

फोटोग्राफ़ी का आविष्कार हुए अभी मुश्किल-से १०० वर्ष हुए हैं, पर इतने ही समय में इसमें कितनी उन्नति, कितना विकास हुआ है, यह जानकर हमें आश्चर्य से चकित हो जाना पड़ता है।

पहिले-पहल संसार के सन्मुख यह विषय सन् १८३९ में आया। लूई डेग्यूरी ने, जो बहुत पहिले से अनुसन्धान में लगे हुए थे, बहुत परिश्रम के बाद उक्त वर्ष में यह प्रमाणित कर दिया कि फ़ोटोग्राफ़ बन सकता है।

इसके बाद ही कई विद्वानों का ध्यान इस ओर आकर्षित होगया। इन लोगों ने अपनी पूरी बुद्धि और योग्यता साहसपूर्वक इस ओर लगा दी। इनमें इङ्गलैण्ड के फॉक्स टालबट और जोजेफ़ नाइप्स के नाम उल्लेखनीय हैं। फॉक्स महोदय को निगेटिव प्लेट के आविष्कार का श्रेय है। इससे यह लाभ हुआ कि एक प्लेट से आप जितने चाहें, उतने फोटोग्राफ़ बना लें। यह जानकर कि उनके इस आविष्कार से पहिले एक समय में एक-ही फोटोग्राफ़ बन सकता था, और यदि दूसरे की आवश्यकता हो तो फिर से फोटोग्राफ़ बनाया जाय, इस बात का पता लगता है कि फॉक्स महोदय का कार्य कितना मूल्यवान् है।

इसके उपरान्त टामस वेजवुड ने जो जोशिया वेजवुड-नामक वर्तन वनानेवाले के पुत्र थे, एक नई वात मालूम की। उन्होंने कागज या चमडे पर लगाने का मसाला तय्यार किया, जिसके लगा देने पर यदि उस कागज़ या चमडे पर कोई भी ठोस (Opaque) वस्तु रख दी जाय, और फिर उसे सूर्य के प्रकाश में रख दिया जाय, तो जो भाग खुला रह जायगा, वह तो काला पड जायगा, और जो उस चीज़ से ढका रह जायगा, वह सफेद बना रहेगा। इससे मसाला लगे हुए कागज़ या चमडे पर उस चीज़ का आकार वन जायगा। पर इनके काम मे एक कच्चापन था। कागज़ का आकार वन जाने के पश्चात् जब वह सब-का-सब प्रकाश में आ जाता था, तो धीरे-धीरे उसका सफेद भाग, जो आकार-स्वरूप होता था, वह भी काला पड जाता था। इस कारण उन्होंने इसे महत्व नहीं दिया, न कुछ ऐसा उपाय सोचने का यत्न ही किया, जिसके कारण वह आकार प्रकाश में आने पर भी स्थाई रह सके।

टालवट महाशय ने अपनी पुस्तक में, जो सन् १८४४ में छपी थी, लिखा है—"छोटा फ़ोटो तो १ या २ सेकण्ड में वन सकता है, पर वडे फोटो के लिये अधिक समय चाहिये। यदि किसी कारण से प्रकाश में कमी होगी, तो भी समय अधिक लगेगा।

"यदि कई आदमी एक साथ ही फ़ोटो वनवाएँगे, तो

भी उतना ही समय लगेगा, जितना कि एक आदमी के फोटो में लगता है। पर यदि हम किसी ऐसे स्थान पर फोटो बनाना चाहें, जहाँ लोग इधर-उधर आ-जा रहे, या हिल-मिल रहे हों, तो फोटो ठीक नहीं बनेंगे। कारण कि एक सेकण्ड के बहुत छोटे भाग में भी उसमें लोग इतना हिल-डुल जाते हैं, कि फोटो बिगड़ जाते हैं।"

पुस्तक में तो टालबट साहब ने लिख दिया, कि फोटो एक या दो सेकण्ड में बन जायगा, पर वास्तव में उस समय फोटो बनाने का इतिहास इसके विरुद्ध बतलाता है। ८० वर्ष पहले फोटो बनवाना तो एक बड़ा ही कष्ट-साध्य काम था, जो कोई फोटो बनवाता था, उसका चेहरा सफेद पोत दिया जाता था, क्योंकि असली चेहरे के रङ्ग से अक्स साफ नहीं आता था।

पर इतने ही पर फोटो बनवानेवाले की जान नहीं छूटती थी। उन्हें कम-से-कम २० मिनट, बिना तनिक भी हिले, स्थिर रहना पड़ता था, और उनका सिर शिकञ्जे में कस दिया जाता था, जिससे बिल्कुल हिल न सके। उस समय का यह कष्ट आजकल के दाँत उखड़वाने के कष्ट से मिलता-जुलता था। फिर सूर्य का तेज प्रकाश चेहरे पर डाला जाता था, जिसके कारण से आँखें बन्द रखनी पड़तीं थीं।

इन बातों को देखते हुए अनुमान हो सकता है, कि कितनी उन्नति हुई है। अब तो कम समय में फोटो बनाने मे आश्चर्यजनक उन्नति होगई है। अब उड़ती हुई चिड़िया की, या गिरते हुए जल की,—यहाँ तक के बन्दूक से निकलती हुई गोली का भी फोटो बन सकता है। एक सेकण्ड का पचास हजारवाँ हिस्सा ही फोटो बनाने के लिये काफी है।

इसमे अधिक शीघ्रता के लिये, यह देखकर कि सूर्य का प्रकाश काफी नहीं है, एक ऐसा यत्र बनाया गया है, जिससे सूर्य से कई-गुना अधिक प्रकाश होता है। यह प्रकाश बिजली के ४०००० ऐसे लैम्पों के प्रकाश के बराबर है, जो ५० वाट के हों। ऐसे कैमरा (Camera) में—जिसके साथ इस यत्र का उपयोग किया जाता है—फिल्म बहुत ही शीघ्रता से चलता है,—लगभग एक घण्टे में २०० मील की रफ़ार से। इससे एक सेकण्ड मे ४००० फोटो लिये जा सकते हैं।



$\frac{१}{५००००}$ सेकण्ड में लिया हुआ बिजली की टूटती बत्ती का चित्र।

बिल्ली के बुज़ुर्ग

— ❀ —

चीता बड़ा भयानक जन्तु है। पहिले यह बहुत-से देशों मे पाया जाता था, अब धीरे-धीरे कम होता जाता है। किसी समय मे यह अफ्रीका और एशिया के प्राय हर भाग मे मिलता था। इससे और पहिले यह योरोप मे भी रहा होगा, क्योंकि खोदने पर इनकी ठठ-रियाँ इङ्गलैण्ड और योरोप के और भी देशों में मिल चुकी हैं।

यह छोटे और बड़े नाप के होते हैं। अँग्रेजो मे छोटे नापवाले को लेपड (Leopard) और बड़े को पैन्थर (Panther) कहते हैं। पर केवल नाम का-ही अन्तर है, इसमे कोई विशेष फर्क नहीं है। सच तो यह है, कि यह कहना बड़ा कठिन है, कि बड़े लेपर्ड और छोटे पैन्थर मे क्या अन्तर है।

छोटे नाप का चीता केवल ५ फुट का होता है (यह नाप नथुने से लेकर पूँछ का सिरे तक का होती है) और बड़ा ८ फुट तक होता है। सब से बड़े चीते पूर्वीय साइ-बेरिया (Siberia) में होते हैं। इनकी पूँछ की लम्बाई इनके शरीर के बराबर होती है।

चीते कई रंग के ... इनका रग सुनहला ...

है, पर कुछ का रग गहरा होता है, जो देखने मे बादामी मालूम होता है, और कुछ का इतना हल्का होता है, कि सफेद मालूम होता है। अफ्रीका और एशिया मे कुछ ऐसे चीते भी हैं, जिनका रग इतना गहरा होता है, कि प्राय काला-सा जान पड़ता है, और इस कारण से उसकी खाल पर काली चित्तियाँ दिखलाई नहीं देतीं। काले रग के चीते दूसरे चीतों से अधिक भयानक होते हैं। कहीं-कहीं एक-दो चीते सफेद रग के भी दिखलाई दे जाते हैं। इनके बदन पर काले रग की चित्तियाँ होती हैं। यह चित्तियाँ किसी में कम और किसी में अधिक होती हैं, और छोटी-बड़ी भी होती हैं। इनका आकार गोल नहीं होता। यह चारों ओर काली होती हैं, पर बीच मे रग हल्का होजाता है। इस कारण यह चित्तियाँ फूल की-सी मालूम होती हैं। चित्तियों के बीच मे हल्के रग का भाग हिन्दुस्तानी चीतों में अफ्रीका के चीतों से अधिक होता है।

चीते मे फुर्ती बहुत होती है। वह सिंह और केहरि से अधिक फुर्तीला होता है। वह इनसे अधिक चालाक और मक्कार भी होता है। योरोपवालों और एशियावालों की यही सम्मति है, कि यह जरा-सी बात में बिगड़ उठता है, और सदा बदला लेने की फिक्र मे लगा रहता है। चोट खाजाने पर वह फौरन् आक्रमण करता है, चाहे बीसियों बन्दूकों का निशाना उसकी ओर हो।

यह ऐसे पहाड़ों पर, जहाँ बहुत घास-फूस हो, खोहों में छिपा रहता है। जहाँ पहाड़ में कोई पत्थर बाहर की ओर निकला हुआ हो, उसके नीचे झाँडियों में, ऊँची घास में, और घाटियों में यह अपना घर बना लेता है। इन स्थानों में छिपा हुआ यह ताक लगाए रहता है, और जहाँ भी कोई शिकार नजर आया, निकलकर बिजली की तरह उस पर टूट पड़ता है।

इसकी खूराक यह होती है—छोटे जगली जानवर,—जैसे, हिरन, जगल सुअर, बन्दर और पत्ती। यह सदा बस्ती के आस-पास चले जाने का इच्छुक रहता है, और वहाँ मौका मिलने पर गाय, बैल, घोड़ों, भेड़-बकरियों, गधों और कुत्तों पर हाथ साफ करता है। कुत्तों का तो इसे बड़ा चाव है। कभी-कभी दिन-दहाड़े पालतू कुत्तों को यह मालिक की आँखों के सामने उठा ले जाता है।

एक बार का जिक्र है, एक अँग्रेज सज्जन अपने बड़े कुत्ते के साथ सीलोन (Ceylon) में हवाखोरी कर रहे थे। कुत्ता उनके साथ-साथ चला जा रहा था। सहसा वह गायब होगया। बाद में मालूम हुआ, कि उसे चीता पकड़ लेगया था। उन्हें यह जानकर बड़ा आश्चर्य हुआ, क्योंकि देखना तो अलग रहा, उन्हें चीते की आहट भी नहीं मिली थी, और कुत्ते को उसने एक-ही झटके में समाप्त कर दिया। तभी तो उसके मुँह से शब्द नहीं निकला।

कभी-कभी तो चीते साहस करके घर में भी घुस जाते हैं। एक बार यूगराडा में एक चीता एक झोपड़ों में घुस गया, और वहाँ छिपकर अपने शिकार की प्रतीक्षा करने लगा। पर लोगों को इसका पता लग गया, और उन्होंने बाहर से द्वार बन्द कर दिया। फिर उस झोपड़े के ऊपर एक बडा छेद करके रस्सी से बाँधकर एक बत्तख नीचे उतारी गई। उसकी आहट पाकर चीता—जो खाट के नीचे छिपा हुआ था—निकला। उसी समय उसके गोली मार दी गई। कभी-कभी वह घर से बच्चों या स्त्रियों को भी पकड ले जाता है।

इसके पंजों और दाँतों में सड़ा हुआ मास लगने के कारण विष उत्पन्न हो जाता है। इस कारण से उनके द्वारा लगा हुआ घाव देर से अच्छा होता है।

बडे सुअर से तो यह चूँ भी नहीं करता। उसका मुकाबला तो वास्तव में शेर भी नहीं कर सकता। एक बार एक शेर और सुअर में लडाई हो पड़ी, जिसे एक अँगरेज सज्जन को देखने का अवसर मिल गया। इसमें शेर का बुरा हाल रहा।

वनमानुस

— ९८ —

इस विषय के अन्वेषणकर्त्ताओं की सम्मति है, कि बन्दरों में वनमानुस अथवा चिम्पानजी मनुष्य से और बन्दरों की अपेक्षा अधिक मिलता-जुलता हुआ है। वास्तव में रूप तथा स्वभाव में उस में और मनुष्य में बहुत कुछ समानता है। उसके चेहरे से दया-भाव झलकता है। अपनी जाति के प्रति उसके हृदय में प्रेम होता है, और थोड़ा-सा सिखला देने पर वह सब काम मनुष्यों के समान करने लगता है। वह मेज पर बच्चों की तरह खाना खाता है। वह बड़ा खिलाड़ी और विनोदप्रिय होता है, और यदि उसे मनुष्यों के-से कपड़े पहिना दिये जाँय, तब तो वह साफ जँचने लगता है, कि वह मनुष्य का कुटुम्बी है।

ानुस अकेला रहना पसन्द नहीं करता। जंगल
२० से ४० तक का झुण्ड साथ-साथ रहता है।
विषय है, कि ज्यों-ज्यों मनुष्य का आधिपत्य
में बढ़ता जा रहा है, वह क्रमशः कम होता



वन-मानुष (चिम्पानज़ी)

वनमानुस

— ॐ —

इस विषय के अन्वेषणकर्ताओं की सम्मति है, कि बन्दरों में वनमानुस अथवा चिम्पानजी मनुष्य से और बन्दरों की अपेक्षा अधिक मिलता-जुलता हुआ है। वास्तव में रूप तथा स्वभाव मे उस में और मनुष्य मे बहुत कुछ समानता है। उसके चेहरे से दया-भाव झलकता है। अपनी जाति के प्रति उसके हृदय मे प्रेम होता है, और थोडा-सा सिखला देने पर वह सब काम मनुष्यों के समान करने लगता है। वह मेज पर बच्चों की तरह खाना खाता है। वह बडा खिलाड़ी और विनोदप्रिय होता है, और यदि उसे मनुष्यों के-से कपडे पहिना दिये जाँय, तब तो यह साफ जँचने लगता है, कि यह मनुष्य का कुटुम्बी है।

वनमानुस अकेला रहना पसन्द नहीं करता। जगल में उनका ७० से ४० तक का झुण्ड साथ-साथ रहता है। यह शोक का विषय है, कि ज्यों-ज्यों मनुष्य का आधिपत्य उनके जगलों मे बढता जा रहा है, वह क्रमश कम होता जाता है। एक विद्वान् ने तो यहाँ तक कह दिया है, कि अफ्रीका के जगल का जिस दिन अन्त हो जायगा, उस दिन वनमानुस ससार से लोप हो जायगा। उस

कहा जाता है, कि अफ्रीका के जगल मे, जो उसका असली निवास स्थान है, अब केवल $1\frac{1}{2}$ लाख के लग-भग वनमानुस रह गए हैं।

विद्वानों की सम्मति मे वनमानुस अन्य वन्दरों से अधिक कुशाग्र-बुद्धि होता है, यद्यपि इसका मस्तिष्क गोरेला वन्दर से छोटा होता है। जन्म के समय वनमानुस मनुष्य के वच्चे का केवल एक तिहाई होता है। दाँत उस के केवल दो महीने बाद ही निकलने लगते हैं, और एक साल के अन्दर उसके सब दूध के दाँत निकल आते हैं।

वनमानुस दो साल का होकर काफी समझदार हो जाता है, और चौदह साल का होकर तो वह अपने पूर्ण विकास को पहुँच जाता है। उसका उस समय वजन एक मन सोलह सेर से लेकर दो मन चार सेर तक होता यह भी मनुष्य से मिलता जुलता होता है। वह लम्बाई चार फुट आठ इंच होती है। [illegible]
४ वर्ष का चिम्पानजी ७० वर्ष के
है।

योरोपवालों को वनमानुस का पता
है, और चिडियाघर में उसे लोग सब
देखते हैं। उसके स्वास्थ्य की वडी [illegible]
पड़ती है, पर आजकल जानवरों ने

सदन और खान-पान का इतना अच्छा प्रबन्ध है, कि प्राय यहाँ जीव बहुत दिन जीते हैं, और स्वस्थ रहते हैं।

बनमानुस के हाथ-पैर गोरेला के हाथ-पैरों से पतले होते हैं। इनके हाथ के बीच की उँगली, मनुष्य के समान और उगलियों से लम्बी होती है।

बनमानुस अफ्रीका मे पाए जाते हैं, और वहाँ बहुत विस्तार से फैले हुए हैं। यह प्राय जगलों मे रहते हैं। जंगल में यह केवल फल-फूल पर निर्वाह करते हैं, मास बिलकुल नहीं खाते, पर जन्तु-शाला मे आकर अपने भोजन मे थोडे मास के अभ्यस्त हो जाते हैं।

जंगल में बनमानुस के झुण्ड सदा भोजन की खोज में, घूमा करते हैं, किसी एक स्थान पर स्थायी रूप में नहीं रहते। यह बड़े जोर से चिल्लाकर बोलते हैं, और जगल के जिस भाग मे यह होते हैं, वहाँ रात-दिन इनका चीत्कार सुनाई देता है। इनका शब्द बड़ी दूर तक सुनाई देता है, और एक ही समय में कई बनमानुस बोलते रहते हैं। बन-मानुस अधिकतर भूमि पर रहता है, पेड पर फल खाने और सोने को ही जाता है। ऊँचे पेडों पर यह घोसले-से बना लेता है, जिसमें मादा बनमानुस और बच्चे रहते हैं, और उससे नीचे को डाल पर यह स्वय घोंसलों की रक्षा करता है।

बुद्धि बन्दरों से कहीं अधिक होती

चलते समय यह चारों हाथ-पैरों से चलता है। इसका सारा बदन काले बालों से ढका होता है।

अवसर पड़ने पर बनमानुस बड़ा भयानक रूप धारण करता है, और इसमें बल भी बहुत होता है। आदमी को देखकर यह भाग जाता है, पर यदि भागने का मौका न मिले, तो यह घूम पड़ता है, और आक्रमण करता है। उस समय इससे पीछा छुड़ाना कठिन होता है। चीते को यह मार डालता है, पर शेर के सन्मुख यह नहीं ठहर सकता। शेर इसे मारकर खाता नहीं।

विटैमिन का महत्व



मनुष्य के स्वास्थ्य और जीवन के लिए आहार अति आवश्यक है। बहुत काल से विद्वान् लोग इस खोज में लगे हुए हैं, कि मनुष्य के लिए कौन-सा आहार सब से अधिक लाभदायक है। यह पता पहिले ही लग चुका था, कि आहार में कई प्रकार के पदार्थ होने चाहियें। इसमें कुछ तो ऐसे हो, जिनमे 'प्रोटीन्स' (Proteins) हों, जिससे शरीर के 'टिश्यू' (Tissue) मजबूत होते रहें, कुछ में 'मिनरल' (Mineral) पदार्थ हो, जिससे हड्डी बनती है, कुछ मे 'कार्बोहाइड्रेट्स' (Carbohydrates) हों, जिनसे शरीर में फुर्ती और गर्मी पैदा होती है, और कुछ मे चर्बी हो, जिससे शरीर के विकास मे सहायता मिलती है।

यह सब मालूम होने पर भी कोई ऐसा आहार निश्चय नहीं किया जा सका था, जिससे आदमी स्वस्थ रहे, और उसके शरीर का नियमित विकास ठीक-से होता रहे। यहाँ तक कि ऐसा आहार करने पर भी, जिसके द्वारा शरीर मे प्रोटीन्स, मिनरल तथा और आवश्यक पदार्थ पहुँच जाँय, पाया गया कि यह पूर्णतया उपयुक्त नहीं है।

एक बात अनुभव से अवश्य सिद्ध हो चुकी है। आहार मे फल और सब्जियों का होना स्वास्थ्य के लिये परमावश्यक है। जो जहाज लम्बी जल-यात्रा पर जाते थे, और ताजे फल-आदि उन्हें मिलने की सम्भावना नहीं होती थी, तो उन पर सूखे हुए फल और सब्जियाँ रखवा दी जातीं थी। पर इन सूखी हुई सब्जियों का स्वाद तो ताजी सब्जियों का-सा होता था, पर इनमें गुण उतना नहीं होता था।

महायुद्ध के आरम्भ के कुछ समय बाद ही एक बड़ी महत्वपूर्ण बात का पता लगा। वह यह थी कि खाने के पदार्थों मे छोटी मात्रा मे कुछ ऐसी चीजों का समावेश है, जिनकी बनावट का पता नहीं लगता। यह चीजे पृथक् भी नहीं की जा सकती, जैसे दूध से मक्खन पृथक् कर लिया जाता है। खोज करने पर यह भी मालूम हुआ, कि भोजन मे इन चीजों के न होने से रोग उत्पन्न हो जाता है।

इस विषय की खोज जारी रही, और अधिक पता लगने पर इन चीजों का नाम 'विटैमिन' (vitamin) रख दिया गया। यह शब्द लैटिन से निकला है, और इसका अर्थ है 'जीवन'। चूँकि यह चीजे जीवन और स्वास्थ्य के लिए परमावश्यक हैं, इसलिए इनका नाम यह रख दिया गया।

कुछ समय पश्चात् जब खोज से इनके विषय में यह पता लगा कि यह कई प्रकार की हैं, तो यह कई श्रेणियों में विभक्त कर दी गई, जो 'ए', 'बी', 'सी', 'डी', और 'ई', हैं। यह अँगरेजी-लिपि के अक्षर हैं। कुछ विटैमिन तो कच्चे मास मे मिलते हैं, कुछ मछली और तेल मे, और कुछ ऐसे पदार्थों में, जैसे दूध, मक्खन, पनीर,—कुछ ताजे फलों और सब्जियों में, और कुछ अडे-आदि मे।

बच्चों के आहार में विटैमिन्स का होना बहुत आवश्यक है। बच्चों की भयानक बीमारियाँ 'रिकेट' (Ricket) और 'स्कर्वी' (Scurvy) कुछ प्रकार के विटैमिन्स के न पहुँचने से हो जाती हैं। विटैमिन 'ए', जो 'कॉडलिवर ऑयल' मे बडी मात्रा मे होता है, बच्चों को 'रिकेट' की बीमारी से बचाता है, और हर बच्चे को यह लाभदायक चीज अवश्य पीनी चाहिये। कभी-कभी तो बिना इसके स्वस्थ्य रहना असम्भव है। विटैमिन 'डी' भी 'रिकेट्स' के लिए लाभदायक है। 'स्कर्वी' के लिए विटैमिन 'सी' लाभदायक है। यह गोभी और उसी जाति की दूसरी सब्जियों में तथा ऐसे रसदार फलों में, जैसे नीबू, नारगी-आदि में होता है। यह टमाटर में भी होता है। हमें यह फल बहुतायत से खाने चाहियें।

कुछ रोग, जो पूर्वीय देशों मे बहुत अधिक हैं, इन

विटैमिन्स के ठीक उपयोग से अच्छे हो जाते हैं। 'बेरी-बेरी' जलोदर से मिलता-जुलता हुआ रोग है। यह विटैमिन 'बी' से अच्छा हो जाता है, और एक दूसरा भयानक रोग 'पिलागिरा', जिससे कभी-कभी पागलपन पैदा होजाता है, विटैमिन 'बी' से अच्छा होजाता है। विटैमिन 'ई' भी बड़ा लाभदायक है। यह गेहूँ में होता है। इसके प्रभाव से पशु जल्दी अच्छे होने लगते हैं।

यह भी जानने योग्य बात है कि विटैमिन 'डी' कुछ खाद्य-पदार्थों पर 'वायोलेट रेज' (Violet rays) डालने से उत्पन्न होजाता है। रिकेट्स के रोगी को इस विटैमिन से लाभ पहुँचता है, इसलिये परिणाम निकला, कि शायद रोगी पर 'वायोलेट रेज' का प्रयोग लाभदायक होगा।

अभी तक यह तो सम्भव नहीं है, कि विटैमिन्स को पृथक् करके आवश्यकतानुसार उनका प्रयोग किया जावे। पर हाँ, ऐसे पदार्थ अवश्य मिल सकते हैं, जिनमें भिन्न-भिन्न विटैमिन्स बहुत बड़ी मात्रा में उपस्थित हों। आग पर भूनने से या पानी में उबालने से बहुत-से पदार्थों के विटैमिन कम हो जाते हैं, अतएव ताजे फलों-आदि को हमें अपने आहार में बहुत स्थान देना चाहिये। यह हर्ष की बात है कि विटैमिन्स सस्ती चीजों में अधिक मात्रा में होते हैं। सब्जीवाले की दूकान में विटैमिनयुक्त पदार्थ मोदी की दुकान से अधिक होते हैं।

अँधेरे में फ़ोटोग्राफ़ी

—❀○ ○❀—

फोटोग्राफी थोड़े समय के अन्दर ही, कुछ-से कुछ होगई है। पर अब तक कैमरे के द्वारा सूर्य के या बिजली-आदि के प्रकाश में-ही फ़ोटो बनते थे। फोटो बनाने के लिये जो फ़िल्म या शीशे का प्लेट बनाया जाता है, उस पर ऐसा मसाला लगा होता है, जिस पर रोशनी का अक्स बन जाता है, सच तो यह है कि कैमरे से बनी हुई तस-वीरें तो सूर्य के कारण ही बनती हैं, मनुष्य का तो उसमें बहुत कम हाथ है।

अच्छा फोटो बनाने के लिये बहुत अच्छे प्रकाश की आवश्यकता है। शौकिया फोटो बनानेवाले भली प्रकार इस बात को जानते हैं। यदि किसी समुद्र के तट का, या बाग का, या आदमियों का फ़ोटो बनाया जाय, जब सूर्य का पूरा प्रकाश हो, और फिर वही तस्वीर ऐसे अवसर पर बनाई जाय, जब सूर्य बादलों से ढक गया हो, तो पता चलेगा कि इन दोनों फ़ोटोज में कितना अन्तर है। पहला फोटो बहुत साफ़ होगा, इसमें हर-एक चीज़ साफ़-साफ़ दिखलाई देगी, और दूसरा धुँधला होगा।

कुछ-ही समय हुआ, फोटोग्राफी मे एक बहुत-ही महत्व-पूर्ण उन्नति हुई है। इसके कारण अब इस बात की आवश्यकता नही रह गई है, कि अच्छी फोटो बनाने के लिये प्रकाश हो। वास्तव मे यदि कुहरे के कारण—जब हाथ को हाथ न सूझता हो—तब भी बहुत अच्छी तस्वीर बन सकती है। इस प्रकार बन्द कमरे में—जहाँ कुछ भी दिखलाई न पडता हो—अच्छी-से-अच्छी फोटो बनसकती है।

ऐसी आश्चर्यजनक बात कैसे हो सकती है? इसका उत्तर यह है, कि विद्वानों ने अन्वेषण करके, ऐसा प्लेट और फिल्म बना लिया है, कि जिस पर अक्स बनने के लिये प्रकाश की आवश्यकता नही है। इन पर इन्फ्रा-रेड रेज (infra-red rays) से ही प्रभाव पड जाता है।

जब सूर्य का प्रकाश 'प्रिज्म' पर पडकर बिखर जाता है, तब हमे तरह-तरह के रङ्ग दिखलाई देने लगते हैं। इसमे बैंजनी, नीला, हरा, पीला, नारङ्गी और लाल होते हैं। पर सूर्य की किरणों मे इनके अतिरिक्त और भी कई रंग होते हैं।

बैंजनी से आगे एक सिरे पर कुछ बहुत शक्तिशाली किरणे होती हैं, जिन्हे हम देख नहीं सकते। इनको 'अल्ट्रा-वायोलेट रेज' (Ultra violet rays) कहते हैं। इनमें बहुत-से रोगनाशक गुण होते हैं, और डॉक्टर लोग रोग में इसका प्रयोग भी करते हैं।

इन रगों के एक किनारे पर तो बैंजनी रग होता है, और दूसरे किनारे पर लाल रग। इस प्रकार इधर भी आँख को न दिखलाई देनेवाली किरणे (*Rays*) होती हैं। इन्हीं को 'इन्फ्रा रेड रेज' (Infra-red rays) कहते हैं। इन्हीं के द्वारा अन्धकार मे फोटो बनाई जा सकती है।

मधुमक्खी और उसके विचित्र काम

— ०❀० —

मधुमक्खी के छत्ते में ३०,००० से ६०,००० मक्खियाँ होती हैं। उनके यहाँ बहुत अच्छा सगठन होता हैं। काम सब बटा हुआ होता है, और हर-एक मक्खी को मालूम रहता है कि उसे क्या काम करना है। इसलिये वहाँ कभी कोई काम बाक़ी नहीं रह जाता, नित्य का काम नित्य समाप्त हो जाता है।

इसके अन्दर सब तरह का काम होता है,—आहार का प्रबन्ध, छत्ता बनाने के लिये सामान का प्रबन्ध, गोदाम का प्रबन्ध, सफाई का प्रबन्ध, पानी के लाने का प्रबन्ध, औषधि का प्रबन्ध, मकान का प्रबन्ध, चीजों को बनाने का प्रबन्ध, चौकी-पहरे का प्रबन्ध—आदि। कुछ को छत्ते के अन्दर गर्मी हवा और सफाई का प्रबन्ध देखना पडता है। कुछ को बच्चों की देख-भाल करनी पडती है। इस पर भी निगाह रक्खी जाती है, कि दुष्टता या कामचोरी के दण्ड का समुचित प्रबन्ध रहे।

यह सचमुच-ही बड़ी विचित्र कहानी है, और इसे पूरे तौर पर बयान करने के लिये बहुत समय और स्थान चाहिये। यहाँ केवल यह बतलाया जायगा कि मधुमक्खी किस प्रकार रहती और काम करती है, और उसमें क्या गुण है, जिसके कारण परिश्रम करने की जहाँ बात आती है, तो उसकी चर्चा उदाहरण-रूप से की जाती है।

जिस समय मधुमक्खियों का झुण्ड किसी खाली छत्ते पर पहुँचता है, तो पहिले उसमें बहुत-सी मधुमक्खियाँ घुसकर पञ्जे के बल लटक जाती हैं। जब सब जगह रुक जाती है, तो और मक्खियाँ पहलेवाली मक्खियों को पकड़कर लटक जाती हैं। पर सब मक्खियाँ ऐसा नहीं करतीं। कुछ सारे छत्ते की देख भाल करती हैं, और यदि कहीं कुछ गन्दगी उन्हें मिलती है, तो उसे साफ कर देती हैं। जब कुछ मक्खियाँ इस काम में लगी हुई हैं, तो कुछ बाहर चौकसी करती हैं, और किसी भी ऐसी मक्खी को अन्दर नहीं आने देतीं, जो उस झुण्ड की न हो। यदि दूसरे झुण्ड की मक्खियाँ इसमें घुसना चाहती हैं, तो उन्हें अपने प्राणों से हाथ धोने पड़ते हैं।

पहला काम जो बहुत आवश्यक है, वह छत्ता बनाना है, जिसमें अण्डे रक्खे जाते हैं। पर इसके बनाने के काम को आरम्भ करने से पहले मोम का होना आवश्यक है, जिसे यह मक्खियाँ स्वयं बनाती हैं। मधुमक्खी के पेट पर

आठ छल्ले-से नजर आते हैं, और इनके नीचे आठ छोटी थैलियाँ। मधुमक्खी के शरीर में कुछ ऐसी नलियाँ होती हैं, जिनके द्वारा वह मधु से मोम बना सकती है। यह काम वह हर समय नहीं करती, केवल मोम की आवश्यकता पड़ने पर बना देती है।

जिस समय मोम बनकर तैयार होता है, वह पतला पानी-जैसा होता है। इसके बनाने के लिये ८७ से ९८ डिग्री फॉरेनहाइट की गर्मी चाहिये। इस गर्मी को उत्पन्न करने के लिये मक्खियाँ खूब सटकर बैठ जाती हैं। पतला मोम फिर साँचे में ढलता है, और बाहर निकलकर धीरे-धीरे ठण्डा हो जाता है। स्केल्स (Scales) देखने में ऐसे मालूम होते हैं, जैसे अबरख। मधुमक्खी फिर अपने पैरों से, जो चिमटी की तरह काम करते हैं, इन स्केलों को खींचकर निकाल लेती है, और अगले पैरों से पकड़कर अपने मुँह में रखकर चबाती है। थूक इसमें मिल जाने से यह मुलायम हो जाता है, और हर तरफ मुड़ सकता है। जितनी मधुमक्खियाँ लटकी होती हैं, वह मोम बनाती हैं, और इस काम को वह बिना किसी तरह का शब्द किये हुए करती हैं। पहिले मोम की एक तह तैयार होकर छत्ते की छत में चिपक जाती है, और फिर दूसरी। इसके बाद भी कुछ उसमें लगा रह जाता है। इसे एक प्रकार की नींव समझना चाहिये, और इस-

पर से मधुमक्खी अपना घर नीचे की ओर बनाती है।

जिन मधुमक्खियों का काम मोम बनाना है, वह तो मोम बनाती जाती हैं, और कुछ मक्खियाँ छत्ता बनाने का काम करने लगती हैं। यह पहले ठीक शकल बनाकर मोम को फिर अन्दर से खोखला करती हैं,—इस प्रकार से कि उसमें ६ पहलू होते हैं, और एक-पर-एक लगाती जाती हैं। मोम काफी मात्रा में तय्यार होता रहता है, और आखिरकार एक बड़ा छत्ता बनकर तय्यार हो जाता है। न तो रानी और न नर-मक्खियाँ मोम बना सकती हैं, इस कारण वह इस काम से अलग रहती हैं।

मधुमक्खी पालने में मोम का प्रबन्ध पालनेवाले को करना पड़ता है, जोकि चौखटों में मोम लगाकर छत्तों की जगह पर रख देता है। इस कारण से मक्खियाँ मोम बनाने के परिश्रम से बच जाती हैं। ऐसा करने में मक्खी पालनेवाले का आशय यह नहीं होता, कि मक्खियों को आराम पहुँचे। वह तो अधिक मधु उसमें से निकालना चाहता है। मक्खियाँ तो मधु केवल मोम बनाने के लिये बनाती हैं, और १५ हिस्से मधु से एक हिस्सा मोम बनता है। इसलिये मालिक को इसमें लाभ रहता है, कि मोम का प्रबन्ध स्वयं कर दे, और मक्खियों को केवल मधु बनाने में लगा रहने दे।

छ पहलू का छेद भी बहुत ही मजबूत होता है, और

इससे ज़रा-सी भी जगह फ़जूल नहीं जाती। गोल छेदों में जगह ख़राब होती है, और चौकोर में उतनी मज़बूती नहीं होती।

मधुमक्खियाँ भाग्य पर कोई बात नहीं छोड़तीं। बहुत-से छेद काम करनेवाली मक्खियों के रहने के लिये होते हैं। इनका व्यास लगभग १ इंच का पाँचवाँ हिस्सा होता है। कुछ छिद्र नर-मधुमक्खियों के रहने के लिये होते हैं। यह पहिले छेदों से कुछ बड़े होते हैं, और रानी मधु-मक्खियों के लिये बिलकुल दूसरी प्रकार के छिद्र होते हैं। यह छिद्र बहुत बड़े होते हैं।

रानी के रहने के छिद्र बनाने के लिये स्थान निकालने के लिये, (यह ३ या ४ होते हैं) छत्ते का कुछ भाग काट दिया जाता है। जब छिद्र बनने का काम आरम्भ होता है, तो रानी इधर-उधर करने में अपना समय निकाल देती है। पर जैसे ही कुछ छिद्र तय्यार हो जाते हैं, वह अण्डे देने का अपना काम प्रारम्भ कर देती हैं। कुछ और मधु-मक्खियाँ नौकरों की तरह उसके साथ रहती हैं। वह पहिले एक छिद्र में एक अण्डा रखती है। ऐसा करने के पहिले वह इस छिद्र को खूब देख-भाल कर लेती है, और सन्तुष्ट हो जाने पर ही अण्डा उसमें रखती है।

साथ की मधुमक्खियाँ एक गोलाकार-सा बनाकर बाहर रहती हैं। रानी एक छिद्र के बाद दूसरे छिद्र में

अण्डे रखती चली जाती है। यह रात और दिन बिना आराम किये हुए अपना काम बड़ी तत्परता से करती रहती है, और उसके सेवक उसे भोजन खिलाते हैं, उसे साफ़ रखते हैं, और अपनी मूछों से थपककर उसे प्रोत्साहन देते रहते हैं। अब रानी में और छिद्र बनानेवाली मधु-मक्खियों में एक प्रकार की प्रतियोगिता-सी होने लगती है। अगर छिद्र बनाने का काम बहुत शीघ्रता से न हो, तो बने हुए सब छिद्रों में अण्डे रखकर रानी को नए छिद्र तय्यार न मिलें। होते-होते सब छिद्रों में अण्डे पहुँच जाते हैं, और जो अण्डे आरम्भ में रक्खे गये थे, वह फूटने लगते हैं। अण्डा ३ से ४ दिन तक में फूट जाता है, और उससे निकला हुआ बच्चा सफ़ेद रङ्ग का बहुत छोटा-सा कीड़ा होता है। इसके पालन-पोषण का काम कुछ मक्खियाँ, जो दाई का काम करती हैं, बड़ी सावधानी से करना आरम्भ कर देती हैं।

नए पैदा हुए बच्चे आरम्भ में मधु को नहीं पचा सकते। इस कारण उन्हें एक प्रकार का दूध, जो दाई का का काम करनेवाली मक्खियों के शरीर से निकलता है, पिलाया जाता है। अपने मधु से यह दूध भी बना लेती हैं।

तीन दिन के बाद बच्चों के भोजन में कुछ अन्तर कर दिया जाता है, और एक अधिक पुष्टिकारक दूध इनको दिया जाता है। बच्चा बहुत शीघ्र बढ़ता है। कई दफ़ा इसके

शरीर से केचुली-सी उतरती है, और फिर यह अपने जीवन के दूसरे अध्याय के लिये तय्यार हो जाता है। जब यह बच्चा अपने पूर्ण विकास को पहुँच जाता है, तो काम करनेवाली मक्खियों का दल इसके छिद्र को मोम से बन्द कर देता है। फिर यह बढा हुआ बच्चा अपने चारों ओर रेशम का-सा ताना बुन देता है, और इसके शरीर में इसी समय परिवर्तन होता है। सर बड़ा हो जाता है, मुँह ठीक रूप में आ जाता है, सर और धड साफ-साफ अलग हो जाते हैं, थोडे निकले हुए कोने पैर बन जाते हैं, और डैने और डंक दिखलाई देने लगते हैं। फिर आँखे खुल जाती हैं, और शरीर का रङ्ग जो अब तक सफेद होता है, रगीन हो जाता है। सोलह दिन बन्द रहने के बाद यह बच्चा बढकर एक काम करनेवाली मधुमक्खी बन जाता है। अपने तेज दाँतों से यह, जिस मोम से छेद बन्द होता है, उसमें एक रास्ता काट लेता है, और उसमे से अपनी मूँछें निकालकर इधर-उधर टटोलता है, और बाद में दाइयों की सहायता से यह बाहर आ जाता है। देखने में यह एक दुबली-पतली मक्खी होती है, पर काम-काज करने के लायक़ हो जाती है। दाइयाँ इसे साफ-सुथरा कर देती हैं, और इसे खिलाती-पिलाती रहती हैं।

कुछ ही घण्टे मे यह मक्खी काम में लग जाती है, और दूसरे बच्चों का काम दाई की तरह करने लगती है।

फिर दो सप्ताह बाद यह मक्खियों के साथ फूल का रस एकत्रित करने जाने लगती हैं। नर-मक्खियों का भी यही क्रम है, पर उन्हें लगभग २५ दिन बाहर निकलने में लग जाते हैं।

एक विशेष ध्यान देने योग्य बात काम करनेवाली मधुमक्खियों के विषय में यह है, कि उन्हें जितने भी काम करने पडते हैं—जैसे छत्ता लगाना, मधु बनाना, मोम बनाना, धाय का काम करना—आदि, उन सब का ज्ञान उन्हें स्वाभाविक ही होता है, कुछ सीखना नहीं पड़ता। इस कारण यह बात ठीक नहीं है, कि मधुमक्खी सब-कुछ अपनी बुद्धि से सीख लेती है,—या, इस सब ज्ञान से तो वह जन्म से सम्पन्न होती है।

रानी की बात और है। सचमुच तो यह नाम ही उसके लिये अनुपयुक्त है। वह दूसरी मक्खियों पर हुकूमत नहीं करती। यह पहिले ही बतलाया जा चुका है कि छत्ता तो घर बनाने का काम करनेवाले बनाते हैं, और इनके छिद्रों में आगे होनेवाली रानियों का पालन होता है, जो आगे चलकर इसी प्रकार अण्डे देकर अपनी जाति-वृद्धि करती हैं। कभी-कभी इन्हें स्थानीय रानी के हाथों अपनी जान गँवानी पडती है, जो रुष्ट होकर दूसरी मक्खियों की अनुमति से इनके प्राण ले लेती हैं।

रानियों के रहने के ३ या ४ छिद्र होते हैं, जो दूसरे

छिद्रों से बड़े और साफ-सुथरे होते हैं। काम करनेवाली मक्खियाँ इनमें लाकर मादा के अण्डे रख देती हैं। चार दिन के बाद इन अण्डों में से बच्चे निकलते हैं। यह वह मक्खियाँ होती हैं, जो आगे चलकर रानी बनेंगी। इनको खाने के लिए भी मामूली से बहुत अच्छा भोजन दिया जाता है। नवे दिन यह बच्चा अपने चारों ओर रेशम का-सा ताना पिरो देता है, और तब इसके रहने का छिद्र बन्द हो जाता है। इसके ७ दिन बाद यह अपने छिद्र से निकलने के योग्य हो जाती है, और अपना रास्ता बनाकर बाहर आ जाती है। इस छिद्र के खाली होते ही कारीगर लोग तुरन्त आकर इसमे छोटे-छोटे छिद्र बना देते हैं, जिनमें मधु जमा होता है। पुराने छिद्र का मोम इन नए छोटे छिद्रों के बनाने मे काम आता है।

एक रहस्य अभी तक विद्वानों की समझ मे नहीं आया है। वह यह है, कि मधुमक्खियाँ एक साधारण अण्डे को लेकर उसे अच्छे बने हुए छिद्र मे रखकर, उससे निकले हुए कीडे को अच्छा भोजन देकर किस प्रकार इस योग्य बना लेती हैं, कि वह रानी बने, अण्डे दे, और इस प्रकार एक नया झुण्ड उत्पन्न करदे। इन सब बातों से तो केवल यह पता लगता है, कि यह विचित्र समुदाय किस भाँति रहता है, और बढ़ता है।

भारतवर्ष में वर्षा

—०❀०—

वैसे तो हर देश के सन्मुख अन्न की उपज का प्रश्न मुख्यतम है, पर भारतवर्ष के लिए तो यह अत्यन्त आवश्यक है। इसका कारण यह है, कि यहाँ की आबादी का बहुत बड़ा भाग, ९० फ़ी सदी के लगभग, अपनी जीविका के लिए खेती पर निर्भर है।

खेती के लिये सामयिक वर्षा की बड़ी आवश्यकता है। यदि समय पर वर्षा न हो, तो फल यह होता है कि अन्न की उपज काफ़ी नहीं हो पाती, और अकाल पड़ जाता है। इससे करोड़ों मनुष्य पीड़ित होजाते हैं।

अब हमें यह देखना है, कि वर्षा किस बात पर निर्भर है। कुछ निश्चित समयों पर कुछ दिशाओं से वायु चलकर आती है, और उसी में वर्षा का जल उपस्थित होता है। इस वायु को अँगरेज़ी में मानसून (Monsoon) कहते हैं। शरद-ऋतु में उत्तर-पूर्व दिशा से मानसून आकर देश-भर में फैलते हैं। पर इस दिशा में कोई जलाशय न होने के कारण,—क्योंकि साइबेरिया से चलकर हिमालय पर होकर यह वायु आती है,—यह ठंडी और सूखी होती है। इसलिए इसे जाड़े का मानसून कहते हैं। वास्तव में यह वायु उत्तर-पूर्व की ओर से आती है। पर पर्वत-शाखा

के कारण इसके कुछ भाग को दूसरा मार्ग ग्रहण करना पडता है, और गङ्गा की घाटी से होकर आना पडता है। इसलिये यह उत्तर-पश्चिम दिशा से आती हुई मालूम पडती है।

गर्मी की ऋतु मे जब सूर्य उत्तर की ओर यात्रा करता है, तो उधर की चट्टाने शीघ्र ही गर्म हो जाती हैं। फलत दक्षिण की ओर से वायु चल पडती है, और अप्रैल मास के अन्त से आरम्भ होकर मध्य जून तक अपने पूरे वेग से चलने लगती है। यह वायु गर्म होने के कारण भारतीय महासागर से बहुत-सी भाप बनाकर अपने मे मिला लेती है, और फिर यही भाप वर्षा के रूप में भारतवर्ष में बरस जाती है।

सब से अधिक वर्षा दक्षिण-पश्चिम के आए हुए मानसून के कारण होती है। भापयुक्त वायु जब वेस्टर्न-घाट पर्वत से टकराती है, तो पश्चिमी तटस्थ प्रदेश मे मई, जून और जुलाई-भर वर्षा होती रहती है। 'पेनिन्सुला' के पूर्वीय भाग मे वर्षा कुछ कम होती है, पर दक्षिण में पहुँचकर इसमें फिर अधिकता हो जाती है। फिर मध्य-भारत के सूखे मैदानों को पार करके मानसून पश्चिमी हिमालय पर पहुँचकर फिर वर्षा करता है।

दक्षिण-पश्चिम से आनेवाला मानसून भी बगाल की खाडी से भाप लेकर सीलोन और बर्मा में जल बरसाता है।

साहित्य-मण्डल-द्वारा प्रकाशित

उत्तम पुस्तकें ।



नाटक—

इतिहास—

जीवन-चरित्र—

विज्ञान—

मनोविज्ञान—

अर्थ-शास्त्र—